सुकुमाल चरित्र

-:संपादक:-

आचार्य वसुनंदी मुनि

प.पू. राष्ट्र तत्त्वसिद्धांत चक्रवर्ती दि.श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानंद जी मुनिराज
के 53 वें मुनि दीक्षा दिवस के उपलक्ष्य में प्रकाशित
ग्रंथांक 52

प्रकाशक:
निर्ग्रंथ ग्रंथमाला समिति रजि.

ॐ ह्रीं नमः

द्वितीय संस्करण : दिसम्बर 2016
प्रतियाँ : 1,000

सुकुमाल चरित्र

-:संपादक:-

आचार्य वसुनंदी मुनि

मंगलाशीषः

प.पू. राष्ट्र तत्त्वसिद्धांत चक्रवर्ती दि.श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानंद जी मुनिराज

प्रकाशक:
निर्ग्रंथ ग्रंथमाला समिति रजि.

मुद्रक :जैन रत्न सचिन जैन ''निकुंज''
मो. 9058017645

प्रस्तुत पुस्तक में मुद्रित समस्त सामग्री, आवरण पृष्ठ, चित्रादि के सम्बन्ध में प्रकाशक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। इसके किसी भी अंश को पूर्व में बिना लिखित अनुमति के मुद्रित करना या करवाना, कॉपीराइट नियमों का उल्लंघन होगा, जिसका सम्पूर्ण दायित्व उन्हीं का होगा और हर्जे – खर्चे के लिए स्वयं जिम्मेदार होंगे ।

रुपये 100/-

आद्य मितार्क्षर

वर्तमान युग में मानव भौतिकता के प्राबल्य से सम्यग्ज्ञान से विमुख हो, मिथ्या ज्ञान की ओर प्रवृत्त हो रहा है। उसकी धारणा वर्तमानिक वैज्ञानिक कसौटी पर कस - परख कर ही बात को स्वीकार करने की बन चुकी है। भौतिक विज्ञान का विकास पुद्गल के विश्लेषण पर आधारित है, इससे पुद्गल की विभिन्न पर्यायों/ अवस्थाओं व शक्तियों का ही अन्वेषण संभव है। आध्यात्मिक ज्ञान, सम्यक्ज्ञान एवं धार्मिक संस्कारों का हनन ही हो रहा है। भौतिक विज्ञान कभी भी सच्चे सुख व आत्म शांति का जनक नहीं हो सकता । भौतिक वस्तुओं के असीमित उत्पादन से मानव की इच्छाओं / आवश्यकताओं में कल्पनातीत वृद्धि हो रही है।

पूर्व काल में आवश्यकता होने पर वस्तुओं का अविष्कार होता था, किन्तु आज अविष्कार होने से इच्छाओं / आवश्यकताओं की वृद्धि हो रही है। जिसका परिणाम दुःख, अशांति, कलह, अत्याचार, क्रूरताऐं, लूटपाट, युद्ध, महामारी, प्राकृतिक प्रकोप, भूकम्प आदि दुर्घटनाऐं प्रत्यक्ष में दृष्टिगोचर हो रहीं हैं। आज मानव जितना दुःखी है शायद ही कभी इतना दुःखी रहा हो, क्योंकि आज इसे दृष्टि विभ्रम या ज्ञान का अजीर्ण हो रहा है। वह दुःख के साधनों से सुख की अभिलाषा कर रहा है। उसका प्रयास बालू पेल कर तेल निकालने जैसा या अग्नि की ज्वाला में शीतलता खोजने के समान निष्फल है। वह अणुबमों से, हिंसा से, नित्य नये खुलते कत्लखानों से, घोटालों व हवाला काण्डों से युक्त गन्दी राजनीति से, छल - कपट, बेईमानी, धोखाधड़ी व जालसाजी से, चोरी या डकैती से प्राप्त धन से सुख शांति की कल्पना कर रहा है, किन्तु उसकी कल्पना आकाश कुसुमवत् या बंध्या स्त्री के पुत्रवत् निर्मूल है। भौतिक संसाधनों से प्राप्त सुखाभास मृग मरीचिका के समान ही है यथार्थ नहीं ।

वास्तविक सुख की प्राप्ति तो समीचीन संयम साधना, परमात्मा की आराधना, जिनधर्म / अहिंसा धर्म की प्रभावना, सम्यग्ज्ञान की उपासना, करुणा, प्रेम, मैत्री, वात्सल्य, परोपकार, क्षमा, मार्दव, आर्जव, संतोष, समता, त्याग, तप, ब्रह्मचर्य, प्रमोद व माध्यस्थ जैसी उत्तम भावनाओं से ही संभव है।

आत्म शांति या विश्व शांति के लिए अस्त्र - शस्त्रों की नहीं अपितु आप्त या शास्ता द्वारा प्रणीत शास्त्रों पर आस्था व उसके स्वाध्याय की आवश्यकता है। आध्यात्मिक ज्ञान की धारा ही वर्तमान में विलुप्त , सुषुप्त मृत प्रायः सुख शांति की धारा को पुनर्जीवित कर सकती है। प्रस्तुत ग्रंथ सम्यग्ज्ञान की प्रेरणा देने वाला अल्पाक्षर, लघुकाय एवं अनुपम ग्रंथ है। इस ग्रंथ में प. पू. आचार्य भगवन् श्री सकल कीर्ति महाराज ने परम्परागत्वर्ती आचार्यों से प्राप्त भगवान महावीर स्वामी की "सुकुमाल चरित्र" विषयक वाणी को ग्यारह सौ (1100) श्लोकों में, अपने ज्ञान, ध्यान, तप के समय में से कुछ समय निकाल कर, भव्यों को मोक्ष मार्ग की प्रेरणा देने हेतु नव सर्गों में रचना की है। इस ग्रंथ में अत्यन्त सरल एवं सुगम शब्दों में धर्म का मर्म, गागर में सागर की तरह भर दिया है। जिसकी विषय वस्तु संक्षेप में इस प्रकार है, विस्तार से आप आगे श्री शास्त्र जी को आद्योपांत पढ़कर देख लें ।

प्रथम सर्ग में :- अंग देश में चम्पा नगरी के राजा चन्द्रवाहन व

रानी लक्ष्मीमती का वर्णन, इसी नगर में नागशर्मा ब्राह्मण व त्रिदेवी की पुत्री नाग श्री द्वारा सूर्यमित्र मुनिराज से धर्मोपदेश सुनकर पंचाणुव्रतों को अंगीकार करने का कथन है।

द्वितीय सर्ग :- इस सर्ग में नाग शर्मा का पुत्री को डांटना, व्रतों को वापिस कराने जाना, मार्ग में हिंसा, झूठ, चोरी सम्बन्धी प्रत्यक्ष पापों का फल देखना, नागश्री का पाप भीरु होने का कथन है।

तृतीय सर्ग :- कुशील व परिग्रह सम्बन्धी पाप का प्रत्यक्ष फल बताने वाली कथाऐं, सूर्यमित्र मुनिराज द्वारा नागश्री को अपनी पुत्री कहना, नागशर्मा का राजा के पास जाकर पुकार करना, मुनि श्री का पुत्री को वायुभूति कहकर, संबोधन करके नागश्री की परीक्षा दिलाना, जिसमें नागश्री का सफल होना इत्यादि कथन है।

चतुर्थ सर्ग में :- नाग श्री को जाति स्मरण होना, मुनि श्री सूर्य मित्र द्वारा नागश्री के पूर्वभव कहना, भरत क्षेत्र, वत्सदेश, कौशाम्बी नगरी - राजा अतिबल एवं मनोहरी रानी के राज्य में राज पुरोहित सोमशर्मा ब्राह्मण व काश्यपी ब्राह्मणी के पुत्र अग्निभूति व वायुभूति का मामा के पास विद्याध्ययन करने जाना, राजगृह नगर में सुबल व रानी सुप्रभा के सूर्यमित्र पुरोहित के द्वारा राजा की रत्न जड़ित मुद्रिका गुम जाना, सुधर्माचार्य द्वारा अवधि ज्ञान से बताना, विद्या सीखने हेतु सूर्य मित्र के मुनि बनने का कथन किया है।

पंचम सर्ग में :- सूर्यमित्र का भावलिंगी मुनि होना, चंपापुर की वंदना से अवधिज्ञान होना, सुधर्माचार्य को बनारस (काशी) के निकट केवलज्ञान व मोक्ष प्राप्त होना, मुनि श्री सूर्यमित्र का चंपानगरी आहार हेतु आगमन, अग्निभूति द्वारा आहार चर्या कराना, वायुभूति द्वारा निंदा करना, अग्निभूति का दीक्षा लेना, वायुभूति का कुष्ट रोग से पीड़ित हो मरकर गधी, शूकरी व कुत्ती होना, पुनः चाण्डाल होना, अग्निभूति द्वारा उसे उपदेश देना व्रत ग्रहण कर निदान से मरकर नागश्री होना।

षष्टम सर्ग में :- नागश्री के पूर्व भव सुनकर नागश्री, राजा चन्द्रवाहन, नागशर्मा, अतिबल, सुबल आदि अनेक स्त्री व पुरुषों का जिन दीक्षा लेना, समाधि मरण करके नागश्री का अच्युत स्वर्ग के पद्मगुल्म विमान में पद्मनाभि देव होना तथा शेष का भी यथा योग्य स्वर्ग में जाने का कथन किया है।

सप्तम सर्ग में :- सूर्यमित्र व अग्निभूति दोनों का बनारस से केवल ज्ञान व मोक्ष प्राप्त करना, सुरेन्द्रदत्त व यशोभद्रा सेठानी का वर्धमान मुनिराज से पुत्रोत्पत्ति के बारे में पूछना, पुत्र का मुख देखते ही पिता वैरागी एवं मुनिदर्शन कर पुत्र भी सन्यासी होगा,ऐसा मुनि का कहना, अच्युत स्वर्ग के देव पद्मनाभि का सुकुमाल के रूप में जन्म लेना, सुकुमाल की विशेषताओं को देख राजा द्वारा "अवंति सुकुमार" की उपाधि देना, सुकुमाल की ३२ श्रेष्ठियों की कन्याओं से शादी होना इत्यादि विषय का विस्तार से कथन किया है।

अष्टम सर्ग में :- यशोभद्र मुनिराज का महलों के पीछे चातुर्मास करना, अवधि ज्ञान से तीन दिन की आयु जानकर त्रिलोक प्रज्ञप्ति का पाठ करना, सुकुमाल स्वामी को जाति स्मरण होना, साड़ी बांधकर महल से नीचे उतरकर जिन दीक्षा लेना, सोमदत्ता (जिसमें वायुभूति ने लात मारी थी) का स्यालिनी बनकर उपसर्ग करना, बारह भावनाओं का चिंतवन करते हुए समाधि से मरण कर सर्वार्थ सिद्धि जाना इत्यादि कथन विस्तार से किया गया है।

नवम सर्ग में :- यशोभद्र मुनिराज द्वारा सुकुमाल आदि पुरुषों के पूर्व भवों का वर्णन करना । नागशर्मा - सुरेन्द्रदत्त, त्रिदेवी यशोभद्रा, चन्द्रवाहन राजा (मैं) यशोभद्र हुआ हूँ, तथा नाग श्री (वायुभूति) सुकुमाल, राजा सुबल राजा बृषभांक ने भी यथा शक्ति मुनिव्रत, आर्यिका के व्रत तथा श्रावकोचित्त व्रत ग्रहण किये । दुर्धर साधना कर सुरेन्द्रदत्त, यशोभद्र, वृषभांक, कनकध्वज चारों को निर्वाण की प्राप्ति होना, इन सभी का कथन इस सर्ग में विस्तार से किया है।

यह धर्म ग्रंथ "सुकुमाल चरित्र" अज्ञान तमोवृत भवारण्य में पथ

भ्रष्ट हो, संसार में भटकते हुए भव्य प्राणियों के लिये सद्ज्ञान रश्मि के समान है, जिन्हें धर्म के प्रति रुचि, आस्था, श्रद्धा नहीं है, उनमें रुचि , श्रद्धा , आस्था व समर्पण पैदा करने में भी समर्थ हो सकता है। रत्नत्रय की प्राप्ति का प्रबल प्रेरक, बैरभाव की गांठ सुलझाने वाला, आहारदान की शुभ प्रेरणा देने वाला, मुनि उपसर्ग जैसे जघन्यतम अपराधों से मुक्ति दिलाने वाला, पंचाणुव्रतों की महिमा व उसके फलों को बताने वाला, अल्प व समीचीन साधना से भी स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति का कथन करने वाला एवं धर्म का अचिन्त्य महात्म्य प्रकट करने वाला है। इसका स्वाध्याय पूर्व किसी हठाग्रह व दुराग्रह से मुक्त होकर, विनय पूर्वक विशुद्ध भावों से आद्योपांत कर, अपने ज्ञान की वृद्धि करते हुए स्व - पर के कल्याण में सहयोगी बनें ।

इस ग्रंथ के प्रकाशन में सहयोगी संघस्थ समस्त साधुवृन्दों एवं त्यागी - व्रतियों को आशीर्वाद, प्रकाशक डी.सी.मीडीया, मुद्रक जैन रत्न,सचिन जैन निकुंज प्रधान संपादक श्री सत्यार्थी मीडीया एवं पुण्यार्जक सुधी श्रावक को धर्मवृद्धि आशीर्वाद ।

इस ग्रंथ के सम्पादन व संशोधन के कार्य में मुझ अल्पज्ञ साधक के द्वारा जो त्रुटियाँ रह गईं हों तो सकल संयमी विज्ञजन मुझे क्षमा करते हुए हमें संकेत देने का कष्ट करें तथा सुधी पाठकगण सुधारकर, गुणग्राहक बन कर पढ़ें ।

'' सर्वेषां मंगलं भवतु ''
जैंन जयतु शासनम्

धर्मोवर्द्धताम्
श्री शुभमिति कार्तिक-13(धन्य तेरस)
वी.नि.संवत्-2542
9 नबम्बर

कश्चिदल्पज्ञ सूरि
संयमासक्त जिनचरणानुचर
ऊँ ह्रीं नमः
आदिनाथ भवन,मीरामार्ग,

पुण्यार्जक श्रावक

सुकुमाल चरित्र

मंगलाचरण

प्रथम - सर्ग

देव शास्त्र गुरु को प्रणमि, सब जग को सुखदाय ।
श्री सुकुमालचरित्र की, हिन्दी लिखूँ बनाय ।।1।।

गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और मोक्ष इस प्रकार पाँच कल्याणक जिनके हुए। जो नित्य और अनन्त गुणों के सागर और समस्त जगत के नाथ हैं, ऐसे महान वर्धमान स्वामी को मेरा नमस्कार है। तीन जगत की लक्ष्मी और सुख की खान स्वरूप धर्म को जिन्होंने प्रकाशित किया और जो धर्म आज भी चार प्रकार के संघों के द्वारा प्रवृत्ति रूप में आ रहा है एवं जो महान हैं जिन्होंने अपने वचन रूपी किरणों से एकांत मतों के अज्ञानरूपी जाल को हटा कर मुक्ति की प्राप्ति के लिए भव्य जीवों को मुक्ति का मार्ग दिखला दिया । जो प्रति समय वृद्धिंगत होने से देवों के द्वारा वर्धमान नाम को प्राप्त हुये एवं जिन्होंने अंतरंग शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने से वीर और महावीर ये सार्थक नाम प्राप्त किये । जनता को सन्मार्ग का बोध कराने से जिन्होंने सन्मति नाम भी

प्राप्त कर लिया ऐसे धर्म साम्राज्य के चक्रवर्ती और तीन जगत से पूज्य श्री वर्धमान भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ। मैं उन आदिनाथ भगवान को भी नमस्कार करता हूँ जिन्होंने युग की आदि में मुग्धबुद्धि आर्यजनों को मोक्ष के लाभार्थ अपनी दिव्यध्वनि द्वारा स्वर्ग मोक्ष के देने वाले गृहस्थ धर्म और मुनि धर्म का उपदेश दिया और शुक्ल ध्यान रूपी तलवार से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और मोहनीय इन चार घातिया कर्मों को नष्ट कर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया है। बाकी अजितनाथादि पार्श्वनाथान्त 22 तीर्थंकरों के चरण कमलों का भी उनके गुणों की प्राप्ति के लिये मैं ध्यान करता हूँ। जो सम्पूर्ण भव्य जीवों के हितार्थ सदैव उत्तम रहे हैं, तीन जगत के नाथ भी जिनकी पूजा और वंदना करते हैं, अनन्त गुणों के समुद्र हैं, सारे जगत के मंगल करने वाले, लोकोत्तम एवं संसार से डरे हुये भव्य जीवों को शरण देने वाले हैं।

मैं उन सीमंधर स्वामी आदि बीस तीर्थंकरों के चरण कमलों की अपने हृदय में स्थापित करता हूँ जिन्होंने पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह में भव्य जीवों को मोक्ष सुख के लिये सन्मार्ग का उपदेश दिया एवं मनुष्यों, देवों और पशुओं तक को संबोधन दिया । ये सीमंधर आदि 20 तीर्थंकर अनन्त गुणों के समुद्र हैं। अन्य जिनेन्द्र देवाधिदेव भी जो भूत, वर्तमान और भविष्यकाल में हुये, हैं और होंगे उन सभी की मैं वंदना और स्तुति व सार अर्थ की सिद्धि की विशुद्धता से नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने महान ध्यानरूपी तलवार से आठ कर्म रूपी शत्रुओं को नष्ट कर अष्ट गुणों से युक्त होकर मुक्ति के साम्राज्य को प्राप्त किया एवं जिनकों तीन लोक के स्वामी भी नमस्कार करते हैं और जो लोक के शिखर पर विराजते हैं।

मैं उन आचार्य परमेष्ठियों की वंदना करता हूँ जो संसार समुद्र में जहाज के समान हैं, छत्तीस गुणों से युक्त और जो स्वयं पंचविध आचार को आचरते एवं अपने शिष्यवर्ग पर अनुग्रहार्थ उनसे आचरण कराते हैं। उन आचार्य परमेष्ठियों की वंदनादि से ही अपने आचार की विशुद्धि होती है।

श्रुतज्ञान की प्राप्ति के लिये मैं उन रत्नत्रयरूप धन के धनी उपाध्याय परमेष्ठियों के चरण कमलों की स्तुति करता हूँ जो निर्वाणरूपी द्वीप की यात्रा के लिये बुद्धिरूपी जहाज पर बैठ कर अंगपूर्वादि स्वरूप शास्त्र समुद्र के पारगामी होते हैं और अन्य योगी जनों को भी उसके पार तक पहुँचा देते हैं।

मैं सदैव अपने हित में लगे हुये उन साधु परमेष्ठियों को उन जैसे ही धैर्य की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ जो महान कठोर तपस्या करते हैं, सदैव ध्यानध्ययन में लीन रहते हुये मोक्ष लक्ष्मी की साधना में लगे रहते हैं, एवं जो पहाड़ों तथा उनकी गुफाओं या निर्जन वन में सिंह के समान निर्भय हो,कर रहते हैं।

ये पाँचों परमेष्ठी जगत में विद्वानों द्वारा वंदनीय और स्तवन किये जाते हैं अतः जो कार्य मैंने प्रारम्भ किया है उसमें वे सभी मुझे अपने - अपने महान गुणों को प्रदान करें । महाकवि के गुणों से परिपूर्ण अंगबाह्य और अंगप्रविष्ट इस प्रकार दोनों श्रुत - ज्ञान रूपी समुद्र के परगामी श्री गौतमादि गणधरों का मैं उन जैसी बुद्धि प्राप्ति के लिये ध्यान करता हूँ। जिनेन्द्र देवाधिदेव के मुखारविंद में निवास करने वाली, चारित्र के पालन कराने में प्रवीण भगवती सरस्वती की मैं स्तुति और वंदना करता हूँ जिसके महान प्रसाद से बुद्धि संस्कारयुक्त, निर्मल और कविता की रचना में समर्थ होती है।

तीर्थंकर द्वारा कहे हुये अंग, पूर्व और प्रकीर्णों को जिन प्रत्येक बुद्धि धारी श्रुतकेवली गणधरों ने धारण कर अर्थरूप से कहे उन सब गणधरों को मेरा नमस्कार हो। महान धीर, महान रूपवान, महान वीर्य पराक्रम के धारी, महान वैश्य कुल में उत्पन्न, महान लक्ष्मी से विभूषित, महामान्य, शूरवीर बड़े - बड़े उपसर्गों के विजयी, महामुनि सुकुमाल स्वामी की उन जैसी शक्ति प्राप्त करने के लिये मैं स्तुति करता हूँ। इस प्रकार महान मंगल के चाहने वाले मैंने संसार के मंगल करने वाले देव, शास्त्र और गुरुओं की वंदना तथा स्तुति की है सो यह तो मैंने कार्य प्रारम्भ किया है उसकी सिद्धि के लिये समस्त विघ्नों का नाश करते हुये, पापनाशन और पुण्यलाभरूप मंगल करें ।

अथ कथामुख

इस प्रकार अपने तथा अन्य भव्यजीवों के अनिष्ट की शान्ति, इष्ट की प्राप्ति और शुभ कल्याण के लाभार्थ देव, शास्त्र और गुरु की वंदना और स्तुति करके अनेक गुणों के समुद्र श्री सुकुमाल (सुकुमाल) स्वामी के पवित्र चरित्र को मैं कहूँगा । ये सुकुमाल महामुनि वैश्यकुलरूपी आकाश में सूर्य के समान प्रकाश करने वाले हुए हैं, जो फूल के समान अत्यंत कोमल शरीर वाले सार्थक सुकुमार नाम के होते हुये भी महान घोर उपसर्गों से वज्र के समान अभेद्य और कठोर थे । जैसे इन्द्र दिव्य भोगों का भोक्ता होता है उसी प्रकार ये सुख - समुद्र में मग्न होते हुये भी संपूर्ण क्षुधादि परीषहों के जीतनें में योगी के समान विजेता थे । तप के प्रभाव से जिनने सर्वार्थसिद्धि नामक स्वर्ग विमान को प्राप्त किया, उन सुकुमाल स्वामी का मैं चरित्र कहूँगा । इसी चरित्र से श्री सूर्यमित्र महामुनि ने जो सिद्धान्त ग्रन्थों का पठनादि किया उसका फल भी कहूँगा । इसी चरित्र के अन्तर्गत अग्निभूति आदि योगी महात्माओं की भी बहुत सी उत्तम कथायें आवेंगी, उन्हें भी मैं कहूंगा ।

इस प्रकार अनेक महापुरुष के सच्चरित्रों से भरे हुए इस सुकुमाल चरित्र के पढ़ने और सुनने से हृदय में संवेगादि भावों की वृद्धि होगी। श्रुताभ्यास आदिक की भावना और प्रवृत्ति होगी। तब सुन्दर कृतियों से राग-द्वेषादि दोष नष्ट हो जायेंगे इसलिये अपने हित चाहने वाले प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि मेरे द्वारा कहे हुए इस चरित्र को अवश्यमेव सुनें ।

अथ कथा प्रारम्भ

देवों तथा उत्तमोत्तम मनुष्यों से परिपूर्ण, एक लाख योजन विस्तार वाले, लवण समुद्र से वेष्टित, असंख्य द्वीप राशि के मध्यवर्ती जंबूवृक्ष से चिह्नित, नदी, पर्वत, देश, नगर, ग्राम आदि से सुशोभित, राजाओं के समूह में चक्रवर्ती के समान जंबूद्वीप है। इस जम्बूद्वीप में एक लाख योजन ऊँचा, समस्त मेरूओं (पर्वतों) में सुन्दर, जिन मन्दिरों से सुशोभित सुदर्शन मेरु है। यह मेरु अनेक देवों, अप्सराओं, विद्याधरों और ध्यानस्थ चारणऋद्धिधारी मुनियों से शोभायमान है और ऐसा लगता है जैसे देवो में इन्द्र । इस सुदर्शन मेरु के दक्षिण दिशा (भाग) में पाँच सौ छब्बीस योजन और उन्नीस में से छह अंश विस्तार वाला, विद्याधरों देवों तथा भूमिगोचरी राजाओं से वेष्टित, धर्म और चारित्र की खान, धर्मात्मा और धर्मायतनों से पूर्ण भरतक्षेत्र शोभायमान है। इसी भरतक्षेत्र के मध्य भाग में आर्य खंड है जो अर्हन्त भगवान, चक्रवर्तियों आदि से सुशोभित, स्वर्ग और मोक्ष की साधना करने वाले महात्माओं के निमित्त कारण स्वरूप, एक असाधारण धर्म की खान के समान, धर्म प्रवृति से विभूषित और आर्य लोगों का निवास स्थान है।

इसी आर्य खंड के नाभि के समान मध्य में नगर, पत्तन खेट, पर्वत, ग्राम और वनोपवन आदि से पूरित दानी, धर्मात्मा, चतुर विद्वान सब प्रकार के श्रावक, मुनिराज आदि सज्जनों से परिपूर्ण अंग नामक देश सुशोभित हो रहा है। उस अंग देश में धर्मात्मा विद्वानों द्वारा सुशोभित, ऊँचे - ऊँचे कोट प्रतोली, खाई आदि से अयोध्या नगरी के समान, दानवीरों,

योद्धाओं, जिनमें बड़े - बड़े महोत्सव होते हैं ऐसे जिन मन्दिरों से सुसज्जित चम्पा नाम की नगरी है।

इस चम्पा नगरी का जनता के पुण्य से प्रतापवान्, धर्मात्मा, विवेकी, चतुर और सच्चरित्र चंद्रवाहन नामक राजा था । जिसके प्राणों से भी प्यारी समस्त पुण्यशाली लक्षणों से सुशोभित, लक्ष्मी के समान श्रेष्ठ लक्ष्मीमती नामक रानी थी। इस राजा के यहां नागशर्मा नामक पुरोहित था जो कुशास्त्रों का ज्ञाता, क्रूर हृदय, जैन धर्म का द्रोही, महान मिथ्यादृष्टि था, जिसके अत्यंत रूपवती त्रिदेवी नामक स्त्री थी और उनके लक्ष्मी के समान सुंदर 'नागश्री नामक पुत्री हुई । जो कि विवेक, रूप, ज्ञान, विज्ञान आदि गुणों से संयुक्त थी तथा जो देव कन्या के समान सुशोभित होती थी ।

एक दिन यह नागश्री अनेक ब्राह्मण कन्याओं के साथ क्रीड़ा करती हुई नगर के बाहर वाले उद्यान में बने हुए नाग मन्दिर में मूढ बुद्धि से पुण्य - लाभ की कामना करती हुई नागों को पूजने चली गई । उस उद्यान में नागश्री ने किसी पूर्व भव में संचित पुण्य कर्म के फल से, पुण्य कर्म के कारणभूत, अनेक ऋद्धिधारी, विद्वान, महाज्ञानरूपी समुद्र के पारगामी, संसारी जीवों के कल्याण में तत्पर, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तथा तप रूप धन वाले, ध्यान और अध्ययन में लीन, प्रासुक (निर्जीव) स्थान पर बैठे हुये सूर्यमित्र और अग्निभूति नाम के दो मुनिराजों को देखा ।

वह नागपूजा का कार्य समाप्त कर मुनि महाराजों के पास आई, उनके चरण कमलों को भोलेपन से ही शिर से प्रणाम कर उनके निकट आ बैठी । श्री सूर्यमित्र मुनिराज ने अपने ज्ञान से उस नागश्री के पूर्व जन्म के वृत्तांत एवं होने वाली सद्गति को जान कर उसको सम्बोधते हुए कहा कि हे पुत्री ! स्वर्ग के कारणभूत गृहस्थ धर्म को तू धारण कर, जिससे कि तू इस भव में भी सुख पावेगी और परलोक में भी तेरे महान अभ्युदय होगा क्योंकि धर्म से ही तीन लोक के सारे सुख मिलते हैं और धर्मात्माओं के सैंकड़ों मनोरथ अपने आपही सिद्ध हो जाते हैं।

मद्य, मांस, मधु और पाँच उदंबर फलों के त्याग से, जुआ, चोरी आदि सात व्यसनों के छोड़ने से, अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत के धारण करने से गृहस्थ का धर्म बनता है। व्रती धर्मात्मा मर कर स्वर्ग में ही जाता है और अव्रती हिंसादि महा पापों से नरक गति या पशु गति में रुलता है। इसलिये जो प्राणी अपना कल्याण चाहते हैं उन्हें चाहिए कि वे अव्रती न रहकर दुराचारों को छोड़कर उक्त व्रत ग्रहण करें । श्रेष्ठ आचरण का नाम ही वास्तव में धर्म है। सूर्यमित्र मुनि महाराज के मुखारविन्द से यह उपदेश सुनकर नागश्री बोली कि हे स्वामिन् ! वे कौन से व्रत हैं, जिन्हें सुख चाहने वाले मानव पालते हैं? नागश्री का यह वाक्य सुनकर वे मुनिराज बोले कि हे पुत्री ! तेरे कल्याण के लिये मैं उन व्रतों का स्वरूप बतलाता हूँ जिसे तू सुन ।

पहला अहिंसाणुव्रत तो यह है कि जितने भी त्रस जीव हैं उनको अपने ही समान समझ, उनकी मन, वचन, काय से रक्षा करना । यह व्रत जगत का हित करने वाला, अपने कल्याण का साधन, कीर्तिकारी, संपूर्ण व्रतों का मूल, समस्त श्रेष्ठ क्रियाओं का आचरण कराने वाला और संपूर्ण जीवों को अभयदान देने वाला है, जिसे तू ग्रहण कर । इस व्रत की रक्षा के लिये मदिरा, माँस, शहद और पाँच उदंबर फलों को विष के समान समझ कर बुद्धिमानों को छोड़ देना चाहिए ।

जो मनुष्य मदिरा आदि के सेवन में लंपटी हैं उनकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। बुद्धि नष्ट हो जाने पर जीवों की रक्षा का कोई विचार नहीं रहता है। जुआ खेलना, चोरी करना, शिकार खेलना, वेश्या सेवन, परस्त्री सेवन, माँस भक्षण और मदिरापान ये सात व्यसन भी पापों की खान और नरक का दरवाजा दिखलाने वाले हैं, इसलिये इनका भी बुद्धिमानों को त्याग कर देना चाहिए । व्यसनी लोगों के दया सत्य आदि गुण कहाँ से आवें और दया सत्यादि के बिना व्रत और धर्म भी कहाँ से आवें? अहिंसा अणुव्रत की रक्षा के लिये चाहे प्राण ही क्यों न निकल जावें किन्तु धर्मात्माओं को जगत में निन्दनीय रात्रि भोजन कभी नहीं करना चाहिये । जो रात्रि को भोजन करते हैं वे नियम

से त्रस जीवों को खाते हैं। जब वे त्रस जीवों का भक्षण करेंगे, तो माँस भक्षण नामक पाप लगेगा । त्रस जीवों की हिंसा के बिना मांस बनता ही नहीं, श्रृंगवेरादि (नीम के फूल आदि) तथा कन्दमूलादि अनन्त जीवों से व्याप्त होते हैं, इसलिये दयालु प्राणी इन पदार्थों का सेवन औषधि में भी न करें और न इनसे बनी औषधियाँ ही सेवन करनी चाहिए । दया धर्म की प्राप्ति के लिये अचार, मुरब्बे, बेर आदि फल तथा लूनिया घी (मक्खन) जिसमें कि ढेरों कीड़े रहते हैं नहीं खाना चाहिए ।

बिना छना हुआ जल भी नहीं पीना चाहिये । क्योंकि अनछने पानी में स्थूल और सूक्ष्म जीव भरे रहते हैं। अनछना पानी पीने वाला अशुभ करने वाला है। इस प्रकार अन्य भी और फल जिनमें कि जीवराशि रहती है, कभी नहीं खाना चाहिए तभी सबसे पहला यह अहिंसाणुव्रत पलता है। सदैव सत्य, हित, मधुर, प्रमाणिक और धर्म को बढ़ाने वाला वचन ही बोलना चाहिये । जिसकी भले आदमी निन्दा करें और असत्य हो ऐसा वचन कभी भी नहीं बोलना चाहिये ।

सत्य वचन बोलने से ही धर्म और यश रहता है। लक्ष्मी बनी रहती है। वचन की सत्यता और प्रमाणिकता से ही विवेक और बुद्धि रहती है। मिथ्याभाषण रूप पाप के फल से कुमरण, मूर्खता, अपयश, अविश्वास, जिह्वाच्छेद सरीखे अशुभफल असत्यभाषियों को मिलते हैं। अचौर्यव्रतकी रक्षा के लिये बिना दिये हुये, पड़े हुए, किसी के द्वारा खोये या भूले हुए पर धन को सर्प के समान भयंकर समझकर नहीं लेना चाहिए ।

दूसरे के धन के अपहरण से मार, बंधन आदि अशुभ फल व इस लोक में और परलोक में दुर्गतियाँ प्राप्त होती हैं। स्त्रियाँ अपने पति को छोड़ शेष सभी पुरुषों को पिता भाई व पुत्र वत् समझें तथा पुरुष अपनी स्त्री के अलावा अन्य स्त्रियों को मन वचन, काय की शुद्धि से माता बहिन व पुत्री के समान समझना ब्रह्मचर्य अणुव्रत है। व्यभिचारी लोग वध, त्रास, धनक्षय आदि दुःखों को यहाँ भी सहते हैं और आगे सातवें नरक तक जाते हैं।

क्षेत्र आदि दश प्रकार के परिग्रहों का परिमाण परिग्रहपरिमाण व्रत की रक्षा के लिए करना चाहिए। इसी व्रत से लोभरूपी शत्रु पर विजय प्राप्त होती है।

हे पुत्री ! ये पाँच अणुव्रत दोनों लोकों के लिये कल्याणकारी हैं। इनमें यहाँ सुख और परलोक में स्वर्गादिसुख मिलता है, सो तू इन्हें प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण कर । ये पाँच अणुव्रत सुख और गुणों के निधान हैं इनको श्रेष्ठ आचरण के द्वारा जो पालते हैं वे अच्युत स्वर्ग तक के सुख भोगकर मानवगति को प्राप्त कर रत्नत्रय धारी हो मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार जानकर तथा मानकर स्वर्ग मोक्ष सुख के करने वाले जिनेन्द्र भगवान् द्वारा इन सारभूत व्रतों को पालना चाहिए, ये व्रत ही तीन लोक में सुख के दाता और धर्मरूप वृक्ष के मूल हैं। अपना हित इसी में हैं कि आयु का एक क्षण भी इन व्रतों के बिना न जाने देवें ।

(इस प्रकार श्रीसकलकीर्ति आचार्य विरचित सुकुमाल स्वामी के चरित्र में नागश्री को धर्मलाभ का वर्णन करने वाला प्रथम सर्ग समाप्त हुआ ।)

मृत्यु से भय उन्हीं को लगता है,
जिन्होंने जीवन का सदुपयोग नहीं किया ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

अथ द्वितीय सर्ग

धर्मोपदेश के देने वाले, तीन लोक के बंधु, समस्त योगीश्वरों को मैं वंदन करता हूँ, वे मेरे व्रतों को उत्तम करें । उस नागश्री कन्या ने मुनिराज के चरणकमलों को नमस्कार कर बड़ी श्रद्धा के साथ उपदेश से प्रभावित हो पाँचों अणुव्रत धारण कर लिये । भावी घटनाओं को अवधिज्ञान के बल से जानकर मुनिराज ने, जब नागश्री व्रत लेकर जाने लगी, तब उसे यह शिक्षा दी कि बेटी! तेरा पिता तुझसे इन व्रतों को छुड़ाने का पूर्ण प्रयत्न करेगा।

परन्तु तू देवों के भी दुर्लभ इन व्रतों को कभी मत छोड़ना क्योंकि व्रतों के आचरणरूपी धर्म से स्वर्ग और मोक्ष की संपदायें मिलती हैं और ख्याति कीर्ति आदि सब सुख अपनी इच्छा के अनुसार प्राप्त हो जाते हैं। जो लोग व्रत लेकर उसका भंग करते हैं वह नीच निंदा के अलावा सैंकड़ों संकट भोगते हुये परलोक में भी दुर्गति में ही रुलते फिरते हैं। इसलिये अगर तू अपने पिता के आग्रह से व्रतों को धारण करने में कदाचित असमर्थ भी हो जाये तो तू मेरे इन व्रतों को मुझे आकर सौंप जाना । मुझे मेरे व्रत वापिस सौंपने के पहले भंग मत करना ।

नागश्री ने मुनिराज की यह शिक्षा सुनकर कहा कि हे जगत् के कल्याण करने वाले तात ! आपने जैसा कहा है वैसा ही होगा, यह कहकर और मुनिराज को नमस्कार कर वह कन्या (नागश्री) अपने घर चली गई। किन्तु नागश्री के साथ जो अन्य ब्राह्मणों की लड़कियाँ गई थीं उन्होंने

पहले ही आकर नागश्री के पिता नागशर्मा पुरोहित से यह बात कह दी थी कि नागश्री ने दिगंबर जैन साधुओं के चरणकमलों को नमस्कार कर उनसे कुछ जैन धर्म के व्रत ले लिये हैं। जब नागशर्मा ने उनसे यह बात सुनी तो वह क्रोध रूपी अग्नि से प्रज्वलित हो उठा और अपनी पुत्री नागश्री को दुर्वचनों के साथ कहा कि बेटी ! तूने भोलेपन में आज यह बहुत ही खोटा काम किया है, जो नग्नमुनियों को नमस्कार किया तथा उनसे व्रत भी ले डाले ।

तुझे तो अपने कुल में चले आये वेद पुराणों में कहे हुये यज्ञ कर्मादि धर्म को ही पालना चाहिए जो कि ब्राह्मणों के लिये उचित है। जिनेन्द्र द्वारा कहा हुआ जीव दयामयी धर्म व्रतादि का पालना ब्राह्मणों के लिये नहीं हैं। इन्हें मेरे कहने से छोड़ दें, ये व्रत उनके लिये ही स्वर्ग मोक्ष के देने वाले हैं अपने लिये कभी नहीं। नागश्री ने पिता के ये वचन सुनकर कहा कि पिताजी ! लिये हुये व्रतों को दुर्बुद्धि लोग ही छोड़ते हैं क्योंकि व्रत लेकर छोड़ने से जगत में नीचता, निन्दा और महापाप होता है और परलोक में सदैव दुर्गतियों में भ्रमण करना होता है। इसलिये स्वर्गमोक्ष के कहने वाले इन अंगीकार किये हुये सारभूत व्रतों को मैं अपने कल्याण की दृष्टि से नहीं छोड़ूँगी । उसके पिता नागशर्मा ने अपनी पुत्री का ऐसा वचन सुन क्रोध से प्रज्वलित हो कहा कि या तो इन व्रतों को तू छोड़ दे अन्यथा मेरे घर से बाहर निकल जा । नागश्री ने अपने पिता के इस दुराग्रह हो जानकर चित्त में अत्यन्त दुःखी हो कहा पिताजी! मेरी एक बात सुनिये वह यह कि जब मैं व्रत लेकर आने लगी तो मुनिराज ने मुझसे कहा था कि जो ये व्रत मैंने तुझे दिये हैं उन्हें तेरा पिता तुझसे छुड़वायेगा, यदि ऐसा ही हो तो जो व्रत तू मुझसे ले जा रही है वे मुझे वापस सौंप जाना। अतः यदि ये व्रत मुझसे छुड़ाना ही चाहते हैं तो उनके व्रत उन्हें वापस सौंप देने दीजिये ।

पुत्री के ये वचन सुनकर पिता नागशर्मा ने कहा कि यह ठीक है, मुझे स्वीकार है। यह कहते हुये मुनिराज की वचनों से निंदा करता हुआ पुत्री को साथ लेकर व्रतों को वापिस कराने के लिये घर से खुद भी चल दिया। जब

पिता पुत्री रास्ते में चल रहे थे तो रास्ते में राजा के सिपाहियों द्वारा एक जवान पुरुष को फाँसी पर लटकाने के लिये ले जाते हुये देखा, वह जवान पुरुष हथकड़ी बेड़ी से बंधा हुआ भी था । नागश्री ने अपने पिता से पूछा कि "पिताश्री! इसने ऐसा क्या अन्याय किया है जो इसे इस प्रकार बांधकर ले जाया जा रहा है?" पिता ने कहा कि "बेटी ! मुझे मालूम नहीं है कि क्या बात है ! कोतवाल से पूछते हैं। पुत्री के साथ ही पिता ने कोतवाल से पूछा कि कोतवाल जी ! इसे किस अपराध से कैद किया है?

पूछने पर कोतवाल ने जवाब दिया कि चंपानगरी में १८ करोड़ द्रव्य का मालिक देवदूत नाम का साहूकार रहता है जिसके समुद्रदत्ता नाम की सेठानी और वसुदत्त नाम का एक ही लड़का था जो खूब जुआ खेला करता था । वसुदत्त अक्षधूर्त नामक जुआरी से जुआ खेला और जुआ में एक लाख दीनार हार गया । अक्षधूर्त ने वसुदत्त से वह धन मांगा जो कि वह जीता था और धन शीघ्र चुका देने को कहा । इस पर मूर्ख, पापी, निर्दयी वसुदत्त ने क्रोध से अंधे होकर छुरी से अक्षधूर्त को मार डाला । जुआ और हिंसा आदि दोषों से दुष्टबुद्धि वसुदत्त को यहाँ के राजा ने फाँसी पर चढ़ाने और इसकी समस्त सम्पत्ति को छीन लेने का दण्ड दिया है इसलिये इसको फाँसी पर लटका देने के लिये ले जाया जा रहा है।

इस घटना को सुनकर नागश्री ने अपने पिता से कहा कि जिस हिंसारूपी कुकर्म से यहीं पर दण्ड मिलते हैं तो मैंने जो संसार में सर्वोच्च पद को देने वाले अहिंसा अणुव्रत को उन मुनिराज के पास से लिया है, उसे कैसे छोड़ूँ? मेरा यह व्रत सुनिश्चित ही सारभूत और उत्तम है। अपनी बेटी नागश्री की यह बात सुनकर नागशर्मा ने कहा कि तूने जो इतने व्रत लिये हैं उनमें से एक अहिंसा तो रहने दे, बाकी व्रतों को उन मुनिराज के पास चल करके छोड़ दे, चल, अपन चलें । वे दोनों जा रहे थे कि रास्ते में एक जगह ऐसा मनुष्य देखने में आया कि जो उल्टे मुंह तो लटक रहा था और उसके मुंह में कांटे लगे हुये थे तथा उसे पीटा जा रहा था । उस आदमी की ऐसी बुरी हालत देखकर

नागश्री ने अपने पिता नागशर्मा से पूछा कि पिताजी ! इस आदमी को इतना कष्ट क्यों दिया जा रहा है? पिता ने उत्तर दिया कि बेटी !

इस ही चंद्रवाहन राजा के पास वज्रवीर्य राजा ने अपनी सेना के साथ उसके देश की हद (सीमा) के ऊपर चढ़ाई करने के इरादे से अपने चतुर दूत के द्वारा यह कहलाकर भेजा कि मेरे स्वामी ने यह कहा है, कि आप मेरी सेवा स्वीकार करो जिसमें कि तुम्हारी भलाई है, यदि तुम ऐसा नहीं कर सकते तो आपकी यह जो चंपापुरी उत्तम नगरी है उसे हमारे स्वामी को दे दें। दूत की यह बात सुनकर चंपापुर के राजा चंद्रवाहन ने कहा कि यहाँ से चला जा और सामर्थ्य हो तो युद्ध के लिये सामने आ जा, मैं आज ही तेरे स्वामी की समस्त शक्ति देखने के लिये खड़ा हूँ। यह कहकर उसे विदा कर बहुत बड़ी सेना के साथ बल नाम के सेनापति को उससे मुकाबले के लिए स्वयं भेज दिया।

बल नामक सेनापति ने भी बड़ी भारी सेना के साथ राजा की आज्ञा से जाकर कायर लोगों को डरा देने वाला युद्ध राजा के साथ छेड़ दिया, जब उन दोनों के बीच महान युद्ध हुआ तो तक्षक नाम का जो राजा का अंगरक्षक था वह मौत के डर से भागकर राजा के पास आया और यह मिथ्यावचन बोला कि हे राजन् ! वज्रवीर्य राजा ने तो आपके हाथी, घोड़े आदि सारी वस्तुऐं छीन ली हैं, बलनामक सेनापति को भी पकड़ लिया है। राजा चंद्रवाहन तक्षक के ये वचन सुनकर अत्यंत दुःखी और उदास हुआ किन्तु घटना सर्वथा विपरीत थी।

उधर बल नामक सेनापति अपने शत्रु वज्रवीर्य राजा को बाँधकर अपने साथ लेकर अपनी चंपानगरी को चला। जब वह चंपानगरी में प्रवेश करने लगा तो उसके आगमन के क्षोभ और आडंबर से चंद्रवाहन राजा ने यही समझा था कि वज्रवीर्य ही आ रहा है। वह युद्ध के लिये स्वयं तैयार हो गया। अपने किले की रक्षा के लिये बड़े - बड़े शूरवीर योद्धाओं को तैनात कर नगरी के दरवाजे बंद करवा दिये और स्वयं राजा चंद्रवाहन हाथी

पर चढ़कर सामने खड़ा हो गया। बल सेनापति ने अपने स्वामी राजा की इस प्रकार की आकुलता जानकर स्वयं आगे आकर प्रकट हो, बन्द दरवाजे खुलवाये और राजा चंद्रवाहन को नमस्कार कर तथा जिस वज्रवीर्य राजा को बांधकर लाया था उसे सामने पेश कर दिया।

चंद्रवाहन राजा ने प्रसन्न होकर सेनापति को इनाम दी जिसे उसने बड़े आदर से स्वीकार किया। राजा ने वज्रवीर्य को भी छोड़ने की आज्ञा दे, अपने वचनों से उसे तृप्त कर, उसके नगर को भिजवा दिया। वज्रवीर्य के अपने देश को चले जाने पर सुखपूर्वक समय व्यतीत करते हुये राजा चंद्रवाहन ने तक्षक नामक अंगरक्षक की कही असत्य वाणी को यादकर उसको दण्ड देने के लिये कोटपाल को आज्ञा दी है, सो हे पुत्री ! कोटपाल इस तक्षक को यह महान दण्ड दे रहा है। इसने जिस मुंह से झूठे वचन कहे थे उसी मुंह में इसके शूल (काँटे) चुभाये जा रहे हैं तथा और भी कठोर दण्ड दिया जा रहा है। नागश्री ने अपने पिता नागशर्मा से यह सब बात सुनकर कहा कि पिताजी।

जिस झूठ के बोलने से यहीं इस प्रकार का दुःख मिलता है तो परभव में तो न जाने क्या होगा? मैंने उन मुनिराज के पास जो असत्य विरमण या सत्याणुव्रत लिया है सो तो इज्जत रखने वाला महान सुंदर व्रत है, इसे कैसे छोडूँ? नागशर्मा ने स्वयं लज्जित हो कहा कि बेटी ! यह व्रत जो तूने लिया है इसे भी रहने दे, परन्तु बाकी तो छोड़ने योग्य ही हैं अतः जल्दी - जल्दी चल, सो उस यति के पास चलकर इन बाकी व्रतों को छोड़कर आवें।

वे व्रत छोड़ने तथा छुड़वाने जा रहे थे, कि रास्ते में एक ऐसे आदमी को देखा जो शूल में लटकाये हुये ले जाया जा रहा था। उसे देखकर नागश्री के हृदय में करुणा आई और उसने अपने पिता से पूछा कि पिताजी ! इस आदमी को किस लिये इस प्रकार दण्ड दिया जा रहा है? पिताजी ने उत्तर दिया कि पुत्री ! मुझे तो मालूम नहीं है, कोटपाल से पूछना पड़ेगा। पुत्री के आग्रह से नागशर्मा ने कोटपाल से पूछा कि इस मनुष्य ने क्या अपराध किया है, जिससे

आप इसे ऐसा दण्ड दे रहे हैं? इस प्रकार पूछने पर कोटपाल ने कहा कि इसी नगरी में एक वसुदत्त नाम का महान धनी बड़ा सेठ है, जिसके वसुमती नाम की स्त्री और उनके वसुकांता नाम की रूपवती पुत्री थी ।

एक दिन उसे सर्प ने डस लिया, और जब वह विष से मूर्छित हो गई तो उसे मरी हुई जानकर सब परिवारीजन श्मशान ले गये और जलाने के लिये चिता पर रक्खी ही थी कि उसी समय उसके पुण्योदय से अनेक देशों में घूमता फिरता एक गरुड़नाभि नामक गारुड़ी रूपवान् वणिकपुत्र (व्यापारी) आ पहुँचा । उसने चिता पर पड़ी हुई रूपवती कन्या को देखकर कहा कि यदि आप इसे मेरे साथ विवाहित कर देने का वचन दें तो मैं इसे जीवित कर सकता हूँ। उसके स्वरूप को विचार कर अर्थात् यह भी वैश्य ही है और यह विवाह का अधिकार भी रखता है, शीघ्र ही वसुकांता के पिता वसुदत्त ने कहा कि तुम मेरी इस पुत्री को जल्दी से जीवित कर दो, मैं तुम्हारे साथ विवाह कर दूँगा।

तब उसने कहा कि मैं इस रात को नहीं किन्तु प्रातः काल होते ही इसे निर्विष करके जीवित कर दूँगा, रातभर इसकी रक्षा करो । वसुदत्त सेठ ने उसकी चिता के कोनों पर एक - एक हजार दीनारों को एक - एक कपड़े में बाँधकर रख दिया और चार शूरवीर मनुष्यों को चिता की रक्षा करने के लिये आदेश दिया और कहा कि मैं इस निर्जन श्मशान में इस रात्रि के समय इसकी रक्षा करने के उपलक्ष्य में तुमको एक - एक हजार दीनार दूँगा । लड़की के घर के लोग सब अपने - अपने घर चले गये और वे चारों शूरवीर धन के लोभ से चिता के चारों ओर पहरा देते रहे । रात बीत जाने पर प्रातः काल होते ही उस गरुड़विद्या के जानने वाले व्यापारी वैश्य ने मंत्रशक्ति द्वारा वसुकांता को निर्विष करके जीवित कर दिया। वसुदत्त सेठ को पुत्री के जीवित हो जाने पर बड़ा भारी हर्ष हुआ और उसने अपने पूर्व वचनों के अनुसार पुत्री वसुकांता को विधि पूर्वक विवाह कर साथ उस गारुड़ी व्यापारी के साथ विदा किया । वे जो चार पोटलियाँ (गाँठें) एक - एक हजार दीनार की

उस चिता के साथ रखी थीं उनमें से एक नहीं मिली, तीन ही मिलीं ।

तब वसुदत्त ने कहा कि इन चारों में से एक ने तो एक गांठ एक हजार दीनार की ले ली, बाकी तीन गांठों को तुम तीनों ले लो । तब वे चारों ही कहने लगे कि मैंने वह गांठ नहीं ली, मैंने वह गांठ नहीं ली । तब वसुदत्त सेठ ने नगरी के राजा से जाकर निवेदन किया कि महाराज ! मेरी एक हजार दीनारें चोरी गई हैं, सो पता लगाकर चोर से दिलवाइये । राजा ने उसी समय चण्डकीर्ति नामक कोटपाल से कहा कि दुरात्मन ! एक हजार दीनार जो चोरी हो गई हैं वे चोर से दिलाइये अन्यथा तुम्हारा मस्तक काट लिया जायेगा । चंडकीर्ति ने कहा कि महाराज ! पाँच दिन के भीतर - भीतर माल सहित चोर का पता लगाकर न ला दूँ, तो जो भी आप चाहें मेरा कर सकते हैं। राजा ने कोटपाल की यह बात सुन पाँच दिन की मोहलत दे दी ।

चंडकीर्ति को चोर का पता लगाने की बड़ी भारी चिंता हुई। वह उन चारों शूरवीरों को अपने साथ लेकर अपने घर चला गया । इस चंडकीर्ति कोटपाल की सुमति नाम की अत्यन्त चतुर रूपवती वेश्या पुत्री थी, उसने अपने पिता को चिंता में मग्न देखकर पूछा की पिताजी ! आप चित्त में चिंतित दीखते हैं सो मुझे चिंता का कारण बतलावें तो मैं उसे दूर करने का प्रयत्न कर सकती हूँ। चंडकीर्ति कोटपाल ने पुत्री से कहा कि इन चारों में से किसी ने एक हजार दीनार की गांठ चुराई है।

परन्तु ये सब इन्कार करते हैं। राजा ने कहा है कि सच्चे चोर का पता न लगा तो तुम्हारा मस्तक छेद होगा सो मुझे बड़ी भारी चिंता है। वेश्य पुत्री ने पिताजी की बात सुनकर कहा कि पिताजी ! आप चिंता न कीजिए - मैं आज ही पता लगाकर आपको चोर बतला दूँगी । चंडकीर्ति ने उन चारों शूरवीरों को भोजनादि कराकर कहा कि पाँच रात तक तुमको यहीं ठहरना होगा । यह कहकर उसने अपने घर के स्थान पर उनके सोने बैठने रहने का प्रबंध कर दिया चंडकीर्ति उनसे भेद लेने को बातचीत करने लगा । चंडकीर्ति की पुत्री वेश्या ने अनुक्रम से एक - एक को बुलाकर अपनी गद्दी पर

बिठाकर कटाक्षों द्वारा अनेक प्रकार के काम विकार के निमित्त बनाती हुई कहने लगी कि मैं तुम चारों में से एक पर आसक्त हो सकती हूँ, परन्तु मेरे हृदय में एक भारी प्रश्न और विकल्प यह है कि तुम चारों शूरवीरों के होते हुए, तुम्हारे द्वारा पहरा लगाते हुये चोर एक हजार दीनार की गांठ कैसे उठा ले गया?

तुम चारों वहाँ क्या कर रहे थे? इस बात को जानने की मेरी बड़ी उत्कंठा है। उनमें से एक बोला कि हे सुमते ! मैं तो रात्रि के पहले भाग में ही वेश्या के यहाँ चला गया और वेश्या के यहाँ से रात के पश्चिम भाग में ही वहाँ आ गया । दूसरा बोला कि मैं भी इसके पीछे - पीछे ही चला गया और एक मेंढा चुरा कर लाया मेरे पीछे घटना कैसे हुई सो मुझे ज्ञात नहीं है। तीसरा बोला कि मैं तो मांस के लिये मेंढे को पकाने लग गया था सो मुझे मालूम नहीं । चौथे ने कहा कि मैंने तो चिता पर रखे उस मुर्दे की तरफ आँख लगा रखी थी, मेरी दृष्टि इन दीनारों की गांठों पर बिल्कुल न थीं । इन चारों पहरेदारों की ये सब बातें सुनकर सुमति वेश्या असली चोर का पता लगाने में संशययुक्त ही रही और अपने प्रयोजन सिद्धि के लिये तत्पर कुटिल आशय युक्त वेश्या ने उनसे कहा कि आप लोगों का दोष प्रतीत नहीं होता है और अब नेत्रों में आलस्य भी आने लगा है इसलिये आलस्य को मिटाने के लिये एक कोई कहानी कहिये । वे चौकीदार बोले कि हम कोई कहानी नहीं जानते, आप ही कहिये तब वह वेश्या बोली कि मैं कहती हूँ - तुम सुनो !

पाटलिपुत्र (पटना) नगर में धनदत्त नामक वैश्य रहता था, जिसके सुदामा नाम की लड़की थी । एक दिन वह अपने महल के पश्चिम भाग में उद्यान वाले तालाब में पाँव धोने के लिये गई वहाँ एक मगरमच्छ ने उसका पाँव पकड़ लिया, वह बड़ी दुःखी हुई उसी समय अपने जीजा धनदेव को कहा कि जीजाजी ! मुझे इस मगरमच्छ ने पकड़ लिया है सो मुझे जल्दी छुडाईये ! हँसी में धनदेव बोला कि - तू मेरा कहना माने तो मैं तुझे छुड़ालूँ । तब उस सुदामा ने कहा कि आप क्या कहते हैं सो कहिये - तब वह बोला कि

जिस दिन तेरा विवाह लग्न हो, उस दिन रात में तू मेरे पास समस्त वस्त्र - भूषण सहित आने का वचन दे । सुदामा ने कहा कि मुझे स्वीकार है। धनेदव ने उसका दाहिना हाथ जोर से खींचकर उस मगरमच्छ से उसे छुड़ा लिया । वह संकट से उस समय छूट गई ।

थोड़े दिनों बाद उसका विवाह हो गया उसे प्रतिज्ञा पूरी करनी थी । अतः वह समस्त वस्त्राभूषण से सुसज्जित उसी विवाह की रात को धनदेव की दुकान पर जाने को अपने घर से निकल पड़ी । वह रास्ते में जा रही थी कि उसे एक चोर मिल गया और उस चोर ने कहा कि तेरे पास जितने वस्त्राभूषण हैं सो मुझे दे दे । सुदामा ने कहा कि इन वस्त्राभरण के साथ ही मुझे एक जगह जाना है सो वहाँ जाकर मैं वापस लौटने पर तुझे दे दूँगी इससे अन्यथा न होगा । वह उस चोर को यह वचन दे आगे बढ़ी । चोर भी उसके पीछे - पीछे कौतुक से ऐसे चला जैसे उसे दीख न सके । थोड़ी दूर जाने पर उस सुदामा को एक राक्षस मिल गया और बोला कि तू अपने इष्ट देव का स्मरण कर क्योंकि मैं तुझे निगलूँगा। वह बोली मेरी एक जगह जाने की प्रतिज्ञा है, सो मैं वहाँ जा रही हूँ जब मैं वापिस लौटूँ, तब जो भी तेरी इच्छा हो सो कर लेना । इस प्रकार उसे भी वह वचन दे आगे बढ़ी, वह राक्षस भी छिपकर उसके पीछे रास्तें में लग कर चलने लगा ।

थोड़ी दूर जाने पर कोटपाल मिल गया उसके द्वारा भी रोकने पर इसी प्रकार धर्मवचन देकर वह सत्यवादिनी वचन में दृढ़ता रखने वाली आगे बढ़ी और निर्विघ्न अपने जीजा धनदेव की दुकान पर अपने वचन को पूरा करने के लिये आ पहुँची । ऐसी रात्रि के समय उस अकेली को आते देखकर विद्वान चतुर और परनारी से पराङ्मुख धनदेव ने उस सुदामा से कहा कि हे मुग्धे । ऐसी अंधेरी रात में इस समय क्यों आई? तू मेरी जो साली है सो मेरी लड़की ही है मेरे तो परस्त्री बहन - बेटी के समान है। जिस समय तुझे तालाब में मच्छ ने पकड़ा था और तूने छुड़ाने को कहा था उस समय जो भी मैंने कहा था वह हँसी में ही कहा था, सत्यरूप से नहीं ।

मेरी ओर से ऐसा वचन कैसे कहा जा सकता था, जैसा कि तूने समझा है? जो परनारी में आसक्त होते हैं वे पापी, पाप से मार - पीट, बंधन, सर्वस्व हरणादि दुःख पाते हैं और अंत में नरक जाते हैं, इसलिये तू अपने स्थान को जा इस प्रकार अपने वचनों से छूटी हुई उस पुराने मार्ग में जिससे कि आई थी रवाना हो गई। रास्ते में (तीन पुरु) चोर, राक्षस और कोटपाल मिले थे उन्होंने उसका सत्य देखकर उससे कहा कि तू महान सत्यवती है और हमारी माता के समान है इसलिये हम तुझे छोड़ते हैं। इस प्रकार वह सब से छूटकर अपने घर चली गई ।

वेश्या ने इस प्रकार यह कहानी उन चौकीदारों को कहकर पूछा कि बतलाओं इन चारों में से कौन सा अच्छा है? तब मेंढे के चोर ने तो चोर की प्रशंसा की और मांस पकाने वाले ने राक्षस की प्रशंसा की, मुर्दे की रक्षा करने वाले ने कोटपाल की प्रशंसा की और वेश्यापति ने धनदेव की प्रशंसा की । इस प्रकार चारों के अभिप्राय को जानकर सुमित वेश्या ने इनकी इस बातचीत से ही असली चोर का पता लगा लिया और चित्त में हर्षित हो उनको यथा स्थान पर भेजकर अपने पलंग पर सो गई । दूसरे दिन जिस मेंढा चुराने वाले ने (चोर चौकीदार ने) रास्तें में मिले हुये चोर की प्रशंसा की थी उसे बुलाकर अपने पलंग पर बिठलाया और उससे कहा कि मैं तुम पर आसक्त हुई हूँ परन्तु मेरा पिता यह नहीं चाहता है कि मैं किसी एक के साथ रहूँ इसलिये मैं चाहती हूँ कि अपन किसी दूसरी जगह चलें ।

उसने भी इस बात की स्वीकारता दी तब सुमति वेश्या बोली कि बाहर हम दोनों के चलने में धन की जरूरत है मेरे पास तो इतना ही धन है जो इस गांठ में बँधा हुआ है परन्तु तुम्हारे पास भी कुछ है या नहीं? तब वह वेश्या में आसक्त होने से सुध - बुध भूलकर बोला कि मेरे पास भी है और उसने एक हजार दीनार वाली गाँठ को बतलाया । वेश्या ने उससे वह गांठ ले ली और कहा कि अब तुम अपने स्थान में सोने को चले जाओ, यह अपने दोनों के आनन्द के लिये होगा, प्रातः काल देशान्तर को चलेंगे, यह कहकर

उसने उसे तो विदा दे दी और वह धन की गाँठ अपने पिता को सौंप दी। इस प्रकार चोर का पता लगा दिया ।

कोतवाल ने उस चोर और माल को ले जाकर राजा के सामने पेश कर दिया - सो राजा ने उस चोर को यह दण्ड दिया है। पाप से भयभीत हुई नागश्री ने यह बात सुनकर अपने पिता नागशर्मा से कहा कि पिताजी ! जिस चोरी से वध, बंधन, धन नाश ,कुलक्षय आदि ऐसे महान दण्ड मिलते हैं उससे अलग होने का अर्थात् बिना दी हुई वस्तु के लेने का त्याग स्वरूप जो अचौर्य व्रत मैंने मुनिराज के पास लिया है वह बहुत ही हितकारी है उसे कैसे छोडूँ? तब उस नागश्री के पिता ने कहा कि इस अचौर्य अणुव्रत को भी रहने दे परन्तु और जो व्रत हैं, उनको तो उनके पास चलकर छोड़ देवें अतः चल ।

इस प्रकार जीव हिंसा, असत्यवचन और चोरी से जिन - जिन लोगों ने अनेक कष्ट, अपकीर्ति और सर्वस्वहरणादि दंड पाये, उनको नागश्री अपनी आँखों से देखकर दुःखों से भयभीत हो, व्रतों में अधिक तत्पर हो गई, इसलिये बुद्धिमान लोगों को चाहिए कि अपने हित के लिये सदैव व्रतों का पालन करते ही रहें। विद्वानों से वंदनीय, स्वर्ग और मोक्ष के सिद्ध करने वाले वे मुनिराज धन्य हैं, जो तीन लोक को संसार सागर से तैराने में चतुर हैं और जो स्वयं संसार के पार चले गये हैं । वे महामुनि धन्य हैं, निर्मल हैं, और जो भव्य जीवों को उनके कल्याण के लिये अणुव्रत और महाव्रत दिया करते हैं।

(इस प्रकार भट्टारक श्री सकलकीर्ति आचार्य विरचित श्री सुकुमाल चरित्र में हिंसा, झूठ और चोरी से उत्पन्न प्रत्यक्ष फल की कथा वर्णन करने वाला द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ ।)

अथ तृतीय सर्ग

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, तप और धर्म रूप रत्नों के देने वाले तपोधन मुनिराजों को स्वर्ग मोक्षरूप सुख की प्राप्ति के लिये मैं नमस्कार करता हूँ।

नागश्री अपने पिता के साथ - साथ जा रही थी कि मार्ग में अत्यन्त दुःखी बंधनबद्ध पुरुष के मस्तक से बँधे हुये कंठवाली, नाक कान कटी हुई एक स्त्री को एक जगह देखकर अपने पिता से पूछने लगी कि इसने ऐसा कौन सा अपराध किया है जिससे इसकी ऐसा दुर्गति हुई है। नागश्री के पिता नागशर्मा ने कहा कि इसी चंपानगर में एक मनस्य नाम का वैश्य है, उसके जैनी नाम की स्त्री और नंद, सुनंद नाम के दो पुत्र हैं। जैनी नामक वैश्य की स्त्री का सूरसेन नाम का भाई है जिसके 'मदग्गली' नाम की लड़की है। एक दिन मनस्य सेठ का लड़का 'नंद' द्वीपांतर जा रहा था कि अपने मामा सूरसेन से जाते हुये कहा कि हे मामा ! मैं बहुत दूर द्वीपान्तर को जाऊँगा सो जो तुम्हारी रूपवती पुत्री है, उसे मुझे दे दो, अगर तुम दूसरे को दोगे तो तुमको राजा की दुहाई है। तब सूरसेन ने कहा कि तुम काल की मर्यादा करके देशांतर को जाओ। नन्द ने बारह वर्ष की अवधि में वापस आने को कह देशान्तर के लिये गमन किया। जब नंद काल की मर्यादा बीत जाने के

बाद छह महीने और बीत जाने पर भी न आया तो उसने अपनी पुत्री उसके छोटे भाई अर्थात् मनस्य सेठ के छोटे पुत्र सुनन्द को देने का संकल्प कर लिया। बड़े ठाट - बाट के साथ दोनों ओर विवाह की तैयारियाँ हुईं, विवाह मंडप सजाये गये।

जब लग्न में केवल पाँच दिन रह गये तो 'नंद' भी द्वीपान्तर से आ गया। नंद को सारा वृतान्त मालूम हुआ तो उसने कन्या पक्ष के लोगों से कहा कि जब आपने अपनी पुत्री मेरे छोटे भाई को देने का संकल्प किया है तो छोटे भाई की पत्नी होने के कारण वह मेरी पुत्री के समान है। यह सुनकर छोटे भाई सुनन्द ने कहा कि जब सूरसेन इस कन्या को मेरे बड़े भाई को दे चुका था तो बड़ी भौजाई होने के कारण अब यह मेरी माता के बराबर है। इस तरह उस कन्या के साथ दोनों ने ही विवाह नहीं किया और वह कन्या अवस्था में ही अपने पिता के घर में ही रह गई।

उसके पिता अर्थात् सूरसेन के घर के पास ही दूसरे मकान में एक दुष्टबुद्धि नागचन्द नामक वैश्य रहता था। जिसके बारह स्त्रियाँ थीं और बारह करोड़ धन का वह पुण्ययोग से धनी भी था, परन्तु वह पापी और व्यभिचारी था, सो सूरसेन की पुत्री में आसक्त हो गया। थोड़े दिनों बाद उन दोनों का वह पापकार्य प्रकट भी हो गया सो ठीक ही है पाप कभी छिपाये छिपता नहीं, वह तो फूटता ही है। इन दोनों की व्यभिचार कथा जनता की जुबान पर आ गई तो भी यह दोनों व्यभिचार में तत्पर ही रहे। नगर के कोटपाल ने यह बात सुनी और परीक्षा के बाद इन दोनों अनाचारियों को कैद कर लिया। राजा की आज्ञा से इनको वध, बंधन, अंगच्छेदक आदि प्राणनाशक दण्ड दिया जा रहा है। अपने पिता के मुख से नागश्री ने यह सब सुनकर कहा कि पिताजी ! शीलव्रत के बिना ऐसे - ऐसे महान दुःख भोगने पड़तें हैं। मैंने उन महात्मा के पास कलंक रहित और जगत् में पूज्य जो शीलव्रत लिया है वह तो महान कल्याणकारी है सो उसे मैं कैसे छोड़ूँ? तब पिता नागशर्मा ने कहा कि इस व्रत को भी तू रहने दे परन्तु बाकी जो और हैं,

उसे तो चलकर छोड़ दें और वे दोनों आगे जाने लगे ।

आगे जाते हुए, मार्ग में नागश्री ने सिपाहियों द्वारा मारने के लिये ले जाते हुए एक पुरुष को देखकर पूछा कि पिताजी ! इस आदमी को क्यों बाँध रक्खा है, और किस अतिनिंदनीय पाप कर्म से इसकी ऐसी दुर्गति हो रही हैं? नागशर्मा ने कहा कि यह वीरपूर्ण नामक पुरुष है, जो क्षीर भोजन ही करता है और महान लोभी है। यह राजा की अश्वशाला की रक्षा पर नियुक्त था । इन अश्वशालाओं में बहुत सा घास था जिसे चरने के लिये एक गाय बैलों का झुंड घुस गया । उसने राजा के सामने जब उसे उपस्थित किया तो राजा ने उसे ही वह सारा झुंड दे दिया, सो वह और भी अति लोभी हो गया और कहने लगा कि इस देश में जितना भी अच्छा गोधन है वह सब मुझे दे दिया है - यह कहता हुआ उसने सब लोगों के गाय बैल आदि छीन लिये ।

रानी के यहाँ जो भैसें आदि थीं वे भी इसने मँगा ली। रानी ने क्रोधित हो उसका सारा हाल राजा से कह दिया कि यह महान लोभी इस प्रकार की कुचेष्टा कर रहा है। राजा चन्द्रवाहन ने अत्यन्त क्रोधित हो इस पापी को महान लोभ जनित पाप के कारण शीघ्र ही मार डालने की आज्ञा दी है, इसलिये इसे मारने को ले जाया जा रहा है।

नागश्री ने अपने पिता से यह बात सुन कर कहा कि पिताजी ! जिस महान परिग्रह से इस प्रकार का महान दुःख लोभीजन भोगते हैं तो मैंने तो मुनिराज के निकट परिग्रह का परिमाण किया है,वह तो बहुत ही लाभकारी है, सो उसे प्राणांत हो जाने पर भी छोड़ना ठीक नहीं । नागशर्मा ने अपनी पुत्री से कहा कि बेटी ! यह व्रत भी ठीक है तू रख ले, किन्तु उस यति को शीघ्र जाकर फटकारना तो चाहिये कि उसने मुझसे बिना पूछे मेरी पुत्री को व्रत कैसे दिये? इसलिये उस दिगम्बर यति की भर्त्सना के लिये अपन (हम दोनों) अवश्य वहाँ चलेंगे । यह कहकर उस स्थान पर वे जा पहुंचे, जहाँ वे मुनिराज विराजमान थे । दूर से ही खड़े रहकर उसने मुनिराज को कठोर और निंदनीय वचन कहना प्रारंभ कर दिया, और कहा कि हे दिगम्बर ! तूने

मेरी पुत्री को जो ये पाँच प्रकार के वचन दिये हैं ये ब्रह्मा, विष्णु और महेश के द्वारा कहे हुये शास्त्र के विपरीत हैं। सो किस प्रकार दे दिये? यह ब्राह्मण की लड़की है उसके लिये ये तुम्हारे द्वारा दिये हुये व्रत सर्वथा अयोग्य हैं, तुमको वेद शास्त्र का भी विचार करना चाहिये । यह सुनकर भविष्य के ज्ञाता योगीराज ने मधुर स्वर से द्विजातियों के हितार्थ कहा कि मैंने मेरी ही पुत्री को ये पांच व्रत जो कि धर्म के बीज और दया के मूल हैं, दिये हैं, इसमें तुम्हारा क्या बिगड़ गया? मुनिराज के ये वचन सुन क्रोध से प्रज्ज्वलित हो नागशर्मा ने कहा कि यह नागश्री तुम्हारी पुत्री कैसे हो सकती है? मुनिराज ने उत्तर दिया कि हे द्विज ! यह नागश्री अवश्य ही मेरी पुत्री है, इसमें कोई संदेह नहीं है, मैं असत्य नहीं बोलता हूँ। नागश्री साम्यभाव धारण कर व्रतों के पालने में तत्पर हो, मुनिराज के चरण कमलों को प्रणाम कर उनके निकट बैठ गई । नागशर्मा ने अत्यन्त क्रोध से युक्त हो शीघ्र ही राजा से जाकर प्रार्थना की और पुकारते हुये कहा कि महाराज !

एक दिगंबर जैन साधु मेरी नागश्री पुत्री को अपनी पुत्री बतलाकर असत्य बलपूर्वक मुझसे छीन रहा है। नागशर्मा पुरोहित ने जो कहा वह सर्वथा असंभव बात थी इसीलिये राजा की सभा के सभी सदस्यों को हृदय में महान आश्चर्य हुआ । विचार करने में महान चतुर राजा ने बड़े आश्चर्य में पड़कर अपने हृदय में सोचा कि चाहे सुमेरु पर्वत चलायमान हो जाये, चाहे अग्नि शीतल हो जाये परन्तु योगीजन कभी झूँठ नहीं बोलते । जिन निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधुओं ने संपूर्ण परिग्रह तक का त्याग कर दिया उनको मिथ्या भाषण से क्या प्रयोजन? किन्तु यह बात भी जगत् में प्रसिद्ध है कि नागश्री नागशर्मा ब्राह्मण की ही पुत्री है। ऐसी अवस्था में कुछ न कुछ रहस्य अवश्य है। यह विचार कर राजा चन्द्रवाहन अनेक लोगों के साथ संदेह को दूर करने के लिये मुनिराज के निकट गया । कितने ही लोग तो मुनि वंदना के लिए धर्म सेवनार्थ उस उपवन को गये और कितने ही इस आश्चर्यकारी विवाद को सुनने के लिए और कितने ही तमाशा देखने के लिये भी उस उपवन में जा पहुँचे । वहाँ

चन्द्रमा के समान निर्मल, अनेक जनों द्वारा पूजित, विद्वान, प्रासुक भूमि पर बैठे हुये उन महाव्रती धीर - वीर श्री सूर्यमित्र मुनिराज को राजा ने भक्ति सहित नमस्कार किया और बैठकर उस बुद्धिमान राजा ने मीठे वचनों द्वारा मुनिराज से प्रश्न किया कि स्वामिन् ! चाहे समुद्र अपनी मर्यादा को लांघ दे, कुलाचल एवं पर्वतों के साथ सारी पृथ्वी उलट - पुलट हो जाये, परन्तु सत्य महाव्रतधारी मुनिराजों के मुख से निकले वचन कभी अन्यथा नहीं होते, यह बात मैं हृदय में अच्छी तरह जानता हुआ भी चित्त में हुये संदेह के दूर करने के लिए कुछ आपसे पूछना चाहता हूँ, और वह यह है कि नागश्री जो आपके चरणों के निकट ही बैठी है, वह किसकी पुत्री है? मुनिराज ने उत्तर दिया कि इतने बैठे हुये विद्वानजनों के बीच मैं सत्य कहता हूँ कि यह मेरी पुत्री है। मुनिराज के यह वचन सुनकर नागशर्मा ने लाल आँखें करके कहा कि राजन् ! अत्यन्त भक्तिपूर्वक नाग देवता की आराधना और पूजा के फल से आप ही के नगर में मैंने अपनी भार्या से यह पुत्री प्राप्त की है। क्या ये अन्य बैठे हुये नगर - निवासी इस बात को नहीं जानते हैं? यह साधु तो ब्रह्मचारी है इसके पुत्री का क्या काम? इसलिये आप इस बात का निर्णय करने में मन लगावें और उपस्थित जन समुदाय भी विचार करें । इसके बाद मुनिराज बोले कि राजन ! यदि इसी की कन्या है तो क्या इसने इसे व्याकरणादि शास्त्र पढ़ाये हैं? क्योंकि पठन - पाठन और शास्त्रज्ञान से ही अज्ञान की हानि होती है।

नागशर्मा ने इसके बाद कहा कि मैंने अभी तो कुछ भी नहीं पढ़ाया है, किन्तु बतलाईये, आपने क्या पढ़ाया है? तब फिर योगीराज बोले कि मैंने अनेक शास्त्र रूपी समुद्र के पार तक इसे पहुँचा दिया है और मेरे इस कथन में रंचमात्र भी संदेह नहीं है। योगीराज के ये वचन सुनकर सब लोग अत्यन्त आश्चर्य में पड़ गये । राजा चन्द्रवाहन ने भी आश्चर्य सहित हो मुनिराज को नमस्कार कर फिर कहा कि स्वामिन् ! यदि आपने इस नागश्री कन्या को पढ़ाया है तो शास्त्र पठन की परीक्षा दिलवाइये, जिससे कि सत्यता मालूम पड़े? राजा की यह बात सुनकर योगीराज ने अपनी अद्‌भुत वाणी से

कहा कि राजन् ! इसी समय इसके द्वारा समस्त शास्त्रों की परीक्षा दिलाता हूँ। मुनिराज ने भरी सभा में जिसमें कि बड़े - बड़े विद्वान भी उपस्थित थे कन्या नागश्री के मस्तक पर दाहिना हाथ रखकर अपनी दिव्य वाणी से कहा कि वायुभूते ! मुझ सूर्य मित्र ने राजगृह नगर में तुम्हें जो बहुत से शास्त्र पढ़ाये थे, उन सारे शास्त्रों की विद्वानों और राजा को इस समय परीक्षा दो जिससे कि सबका संदेह दूर हो जावे। इतना कहते ही नागश्री अपनी दिव्य वाणी से सरस्वती की तरह अनेक शास्त्रों का पाठ करने लगी और जो भी कोई विद्वान उससे कुछ प्रश्न करता था उसका युक्ति प्रमाण पूर्वक ठीक - ठीक उत्तर देने लगी । इस शास्त्र परीक्षा से राजा तथा समस्त उपस्थित विद्वानों को उस समय बड़ा भारी आश्चर्य हुआ । इसके बाद चंद्रवाहन राजा ने मुनि को नमस्कार करके कहा कि स्वामिन् ! यह नागश्री आप ही की लड़की है इस ब्राह्मण की नहीं है, परन्तु मेरे तथा उन उपस्थित अन्य लोगों के हृदय में भी एक संदेह अवश्य है कि आपने नागश्री से तो परीक्षा दिलाई और नागश्री को 'वायुभूति' कहकर संबोधन किया सो क्या कारण? इसमें सभी को बड़ा भारी आश्चर्य है।

राजा के इस प्रश्न पर सूर्यमित्र मुनिराज ने उत्तर दिया कि राजन् ! पूर्वभव में यह जो इस समय नागश्री है सो वायुभूति ही था यह सुनकर राजा को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ और मस्तक से मुनिराज को नमस्कार कर सविनय कहा कि भगवन् ! कृपा करके नागश्री और वायुभूति के पूर्व भवों का अपनी वाणी से वर्णन करें । राजा के इस प्रश्न से भव्य जीवों के कल्याणार्थ अनुग्रह पूर्वक योगीराज बोले कि राजन् !

अन्य उपस्थित भव्यजीवों के साथ अपने मन को वशीभूत करके वैराग्यभाव को पैदा करने वाली नागश्री की कथा मैं कहता हूँ सो सब लोग सुनें । वायुभूति का तथा हमारा पूर्वजन्मों का संबंध तथा भवांतर हुये और उनमें जो - जो पुण्य पाप किये हैं और उनके द्वारा जो भी फल हुआ उस सबका वर्णन मैं करता हूँ। महान पाप को कमाने से इस नागश्री ने जो क्लेश कारक, दुर्गतियाँ प्राप्त कीं और जिस पुण्य के लेश से यह ब्राह्मण की

पुत्री हुई यह सब भी मैं कह रहा हूँ, सो सारे सत्पुरुष सुनें।

अनंत गुणों से समुद्र, धर्मतत्व के प्रकाश करने के लिए दीपक के समान, व्रतरूप आभूषणवाले, स्वर्ग मोक्षादि के कारण, मानव और देवों से पूज्य, कर्म शत्रुओं से दूर और महान ऐसे अरिहंत, सिद्ध आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु इन पाँच परमेष्ठियों को नमस्कार करता हूँ।

(इस प्रकार श्री आचार्य सकल कीर्ति भट्टारक विरचित सुकुमाल चरित्र में कुशील और परिग्रह से उत्पन्न दोषों को दिखाने वाला और नागश्री के भवांतरों के प्रश्न का वर्णन वाला तीसरा सर्ग समाप्त हुआ।)

अथ चतुर्थ सर्ग

मैं ग्रन्थकर्ता अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधुओं को उन जैसे गुणों की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ।

इस भरतक्षेत्र के वत्सदेश में कौशांबी नामक नगरी है वहाँ अतिबल राजा राज्य करता था। उसके मनोहरी नाम की प्रिय पटरानी थी, और सोमशर्मा नाम का शास्त्रज्ञाता ब्राह्मण पुरोहित था। सोमशर्मा के काश्यपी नामक स्त्री थी इनके दो पुत्र थे बड़ा अग्निभूति और छोटा वायुभूति इन दोनों पुत्रों को बाल्यकाल में खूब लाड़ - लड़ाया, खिलाया, पिलाया, एवं पिता ने अनेकों बार पढ़ाने का प्रयत्न भी किया। परन्तु ये पढ़े ही नहीं। पाप के उदय से इन दोनों का पिता सोमशर्मा मर गया, राजा ने अज्ञान से इन दोनों मूर्खो को ही पुरोहित पद दे दिया। ये दोनों ब्राह्मण पुत्र सुख पूर्वक रहते हुये काम भोग के सुखों में आसक्त हो गये, शास्त्रज्ञान से तो ये रहित थे ही।

उन्हीं दिनों बहुत देशों में भ्रमण करते करते न्यायशास्त्र संबंधी विवाद से अनेक वादी विद्वानों का अभिमान चूर करने वाला विजयजिह्वि नाम के एक विद्वान ने राजा के महल पर यह सूचना पत्र चिपका दिया कि जो राजपुरोहित हो मुझसे विवाद करें। राजपुरोहित के सिवाय दूसरे को अधिकार नहीं। इस सूचना पत्र से अन्य विद्वानों ने तो वाद पत्र लिया नहीं तब राजा अतिबल ने इन दोनों भाईयों को बुलाकर यह आज्ञा दी कि तुम यह वाद पत्र लो और विजयजिह्वि वादी से शास्त्रार्थ करो। उन दोनों मूर्ख ब्राह्मण

पुत्रों ने उस वाद पत्र को लेकर फाड़ डाला । तब राजा अतिबल ने उनको महामूर्ख समझकर पुरोहित पद से अलग कर दिया और सोमिल नामक दूसरे ब्राह्मण को राजपुरोहित पद दे दिया । वे दोनों मानभंग से हृदय में बड़े दुःखी हुये, आजीविका नष्ट हो जाने से विचारने और कहने लगे कि हमको हमारे पिता ने पढ़ाने का बड़ा भारी प्रयत्न किया था, परन्तु हम इतने मंदभागी रहे कि पढ़ न सके, अत्यंत मूर्ख ही रह गये और कुमार्गगामी हो गये । ज्ञान रूपी नेत्र के बिना धर्म कुधर्म की परीक्षा नहीं हो सकती तथा इस लोक में मान्यता नहीं हो सकती तब परलोक में कल्याण कैसे हो सकता है? जिन्होंने संसार के तत्वों को प्रकाशित करने वाला गुरु के पास ज्ञानरूपी नेत्र प्राप्त नहीं किया वे शिक्षा हितोपदेश आदि कुछ नहीं मानते, वे दुर्बुद्धि होते हैं और उनके दोनों भव बिगड़ जाते हैं। ज्ञान से ही स्वच्छ कीर्ति होती है और ज्ञान से ही सम्पूर्ण ऋद्धियाँ एवं भव्यजीवों को कल्याणकारी केवलज्ञान भी होता है। यह विचार कर वे दोनों श्रुतज्ञान प्राप्त करने को अत्यंत उत्सुक हो गये और शीघ्र ही देशान्तर जाकर पढ़ने का दृढ़ निश्चय किया ।

इन दोनों की माता काश्यपी उनको अपने कल्याण के लिये शिक्षाभ्यास के प्रति अत्यन्त उत्सुक देखकर बोली कि पुत्रो ! राजगृह नगर में सुबल नाम का राजा और उसके सुप्रभा नामक स्त्री है उनके जो सूर्य मित्र नाम का पुरोहित है वह मेरा भाई है जो ज्ञान विज्ञान से सम्पन्न और विद्वानों में शिरोमणि है, वह तुम्हारा मामा होता है सो तुम्हारा हितैषी है। अगर शास्त्राभ्यास के लिये वास्तव में ही इच्छा है तो तुमको उनके पास शीघ्र जाकर पढ़ना प्रारंभ कर देना चाहिए । अपनी माता की बात सुन वे दोनों विद्या के इच्छुक राजगृह नगर जा पहुंचे और ब्राह्मणों में श्रेष्ठ सूर्यमित्र को नमस्कार कर बोले कि मामा ! हमें हमारे पिताजी ने पढ़ाने का बड़ा भारी प्रयत्न किया परन्तु हम मूर्ख ही रहे, खेलकूद में लगे रहने से कुछ न पढ़ सके । पिता के मर जाने पर हमारा पद राजा ने दूसरे को दे दिया । अब हमको हमारी माता ने आपके पास पढ़ने को भेजा है, आप ही हमारा हित करने वाले हैं। आप

हमें पढ़ाइये जिससे हम शास्त्रज्ञ होकर अपने खोये हुये पद को फिर से प्राप्त कर सकें । विद्वान सूर्यमित्र पुरोहित ने अपने हृदय में सोचा कि लाड़ व प्यार के कारण ये पिता से न पढ़ सके, अगर मैं इनको अच्छा भोजन दूँगा तो ये खिलाड़ी हो जायेंगे जिससे न ये कुछ पढ़ सकेंगे और न इनकी कार्य सिद्धी हो सकेगी ।यह विचारकर सूर्य मित्र ने कहा मेरे कोई बहिन ही नहीं तो तुम भान्जे कहाँ से आये? मेरा तुमसे कोई संबंध मामा भांजेपन का नहीं है। तुम और ब्राह्मणों के घर से भिक्षा माँगकर भोजन करते रहोगे और पढ़ते रहोगे तो मैं तुम्हें पढ़ाऊँगा, अन्यथा नहीं ।

उन्होंने सूर्यमित्र विद्वान की इस बात को स्वीकार कर पढ़ना प्रारम्भ किया और थोड़े से श्रम में ही प्रमाद रहित हो परमादर से अनेक शास्त्र पढ़ गये और महाविद्वान बन गये । जब वे अनेक शास्त्रों के परगामी हो गये और अपने घर लौटने लगे तो सूर्यमित्र विद्वान ने उनको वस्त्रादि दे विदा करते समय कहा कि मैं तुम्हारा हितैषी मामा ही हूँ यदि मैं भी तुम्हारे पिता की तरह यहाँ भी लाड़ - प्यार करके अपने घर में ही भोजनादि कराता तो तुम कभी न पढ़ते इसलिए मैंने तुमसे कह दिया था कि मैं तुम्हारा मामा नहीं हूँ और तुम्हारे हित के लिये तुम्हें इस प्रकार दरिद्रता पूर्वक रख भिक्षा भोजन कराके पढ़ाया है।

मामा सूर्यमित्र की यह बात सुन अग्निभूति ने उसकी प्रशंसा की और कहा कि आप हमारे पिता ही हो आपने जो किया है सो सब हित और पथ्य ही है, आपने हमारा जन्म सफल कर दिया और ज्ञानदान से आजीविका का उपाय भी कर दिया । विद्या और धर्म के दान से बड़ा दूसरा कोई दान नहीं है। जो ज्ञान और धर्म के दाता का उपकार नहीं मानते वे मूर्ख और कृतघ्न होते हैं। कल्याण के कारणभूत उपकार का न मानना ही कृतघ्नता और मूर्खता है जो ऐसे कृतघ्नी मूर्ख होते हैं उन पापियों के पाप से सब पढ़ी हुई विद्या भी नष्ट हो जाती है और वे यहाँ तो महामूर्ख होते ही हैं किन्तु परलोक में दुर्गति के पात्र होते हैं। अग्निभूत ने तो इस प्रकार अपने विद्वान

मामा का बड़ा भारी उपकार मानकर स्तुति की, किन्तु वायुभूति ने दुर्गति करने वाली, मामा की निन्दा करते हुये कहा कि तू हमारा कैसा मामा है? तू महान निर्दयी, नीच और चांडाल के समान है जो तूने हमसे भिक्षा भोजन कराया। यहाँ आचार्य कहते हैं कि ये दोनों सहोदर (एक ही पेट से पैदा हुए) हैं परन्तु दोनों में ही कितना अंतर है? इस बात से मालूम होता है कि कर्मों की गति विचित्र है। इसके बाद दोनों अपने नगर जाकर राजा के पास गये, राजा को आशीर्वाद दे, अपनी बुद्धि से राजा को अपनी शास्त्र कुशलता का परिचय दिया। राजा ने भी सम्मान पूर्वक उनको उनका पुराना पद दिया और वे संपत्तिशाली होकर सुखपूर्वक रहने लगे।

इस कथा को यहीं रहने दीजिए - बीच में एक घटना और हुई जो इस प्रकार है कि राजगृह नगर का राजा सुबल बहुमूल्य रत्नों से जड़ी हुई अंगूठी पहने हुये था जब स्नान के पहले तैल मर्दन कराने को तैयार हुआ तो रत्नों की आभा खराब न हो जाये इसलिये अंगूठी खोलकर सूर्यमित्र विद्वान पुरोहित को सौंप दी। पुरोहित ने उसे अपनी अंगुली में पहन ली और घर चला गया, घर जाकर उसने संध्यातपर्णादि ब्राह्मण कर्म कर जब राजा के दरबार में जाने की तैयारी की तो, उसे अपने हाथ की अंगुली में अंगूठी नहीं दिखी तब वह महान उदास हो गया। उसने परमबोध नामक विद्वान ज्योतिषी निमित्तज्ञानी को स्वयं बुलाकर पूछा कि मेरे हाथ से जो सुवर्ण रत्नमयी अंगूठी गिर गई है, वह मिलेगी या नहीं? उस निमित्तज्ञानी ने उत्तर दिया कि मिल जायेगी, उसने उसे विदा कर दिया उसकी चिंता यों न गई कि "उसे तो राजा को उसी समय अंगूठी वापस देनी थी" वह चिंता से व्याकुल हो अपने महल के ऊपर चला गया, उसने नगर के बाहर उपवन में जाते हुये बड़े संघ सहित, भव्य जीवों को संबोधने वाले, तीन लोक के देवों से पूजित चरण वाले, मतिश्रुत अवधिज्ञान के धारी, जगत् के हित करने वाले, जगत् में वंदित जगत् में श्रेष्ठ, जगत् से स्तुत्य सुधर्म नामक आचार्य को देखा उसने उन आचार्य को देखकर विचार किया कि यह ज्ञानवान् साधु है सो मेरी अंगूठी की बात को अवश्य ही

जानता होगा इसलिए एकान्त में इससे पूछना चाहिए। यह विचार कर काललब्धि से वह सूर्यास्त होने के समय से कुछ समय पहले अंगूठी के विषय में पता लगाने के लिए आचार्य - संघ के निकट आया। अवधि ज्ञान, अनेक ऋद्धि आदि गुणों के सागर, अपने शरीर में भी निःस्पृह, मोक्ष सिद्धि में इच्छा करने वाले योगी को देख लज्जा और अभिमान से प्रश्न करने में असमर्थ होता हुआ भी अपने कार्य की सिद्धि के लिये आसपास चक्कर काटने लगा। अवधिज्ञान के योग से परोपकारी सुधर्माचार्य ने उसे निकट भव्य जान कहा कि - हे सूर्यमित्र ! राजा की अंगूठी को अपनी अंगुली में से गिराकर चिंतित हो क्या तू यहाँ मेरे पास अपनी चिन्ता मिटाने आया है? सूर्य मित्र पुरोहित ने अपनी मानसिक चिंता और संपूर्ण बात जानकर परम आश्चर्यान्वित हो, योगीराज ने कहा कि 'हाँ'। सूर्य मित्र ने मुनिराज को नमस्कार कर पूछा, कि स्वामिन् ! जहाँ वह अंगूठी गिरी है। वहाँ का पता बतलाइये। तीन ज्ञानरूपी नेत्र वाले योगीराज ने उत्तर दिया कि विद्वान ! तुम्हारे महल के पीछे वाले उद्यान वाले तालाब में जब तुम सूर्य को अर्घ दे रहे थे तब तुम्हारे हाथ की अंगुली से अंगूठी निकलकर सरोवर वाले कमल की कली में गिर गई और अदृश्य होकर अभी तक वहीं मौजूद है सो तुम उसके लिए चिंता छोड़ दो और मेरे वचनों में निश्चय करो। पुरोहित विद्वान ने यह सुन वहाँ जाकर उसे देखा तो वह ऐसी ही मिली और राजा को सौंप कर हृदय में भारी आश्चर्य किया और विचार किया कि यह समस्त ज्ञानियों में श्रेष्ठ, सारे विश्व को प्रत्यक्ष जानने वाले, अनुपम ज्ञानी हैं। ऐसा निमित्तज्ञान सब निमित्तज्ञानों में सारभूत है, इसलिये इस योगीराज की आराधना कर यह प्राप्त करना चाहिये, जिससे मेरी सत्पुरुषों एवं विद्वानों में बड़ी प्रसिद्धि होगी, मान्यता होगी, खूब ऐश्वर्य बढ़ेगा और उत्तम पद मिलेगा। इस प्रकार धनादि के लोभ से विचार कर गुरु के निकट वह विद्या सीखने गया और उन योगियों के स्वामी को नमस्कार कर हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि हे भगवन् ! मुझ पर दया करके समस्त पदार्थों को प्रत्यक्ष दिखलाने वाली यह दुर्लभ विद्या मुझे भी देने की कृपा कीजिए क्योंकि,

आप कृपानाथ हैं। यह सुन ज्ञानी श्री मुनिराज ने कहा कि यह उत्कृष्ट विद्या निर्ग्रन्थ नग्न दिगम्बर ज्ञानी के बिना किसी को प्राप्त नहीं होती, इसीलिये यदि तुमको यह विद्या प्राप्त करनी है तो मेरे समान तुम भी निर्गन्थ दिगम्बर बनो। ब्राह्मण विद्वान ने योगीराज की बात सुनकर अपने घर व कुटुम्ब के लोगों को बुलाकर दिगम्बर भेष धारण करने का उनसे विचार प्रगट किया और कहा कि योगीराज के पास बड़ी अद्‌भुत विद्या है जो निर्गन्थ दिगम्बर भेष धारण किये बिना वह किसी को देता नहीं है, इसलिये उस विद्या की सिद्धि के लिये मैं निर्ग्रन्थ दिगम्बर बन जाता हूँ। मैं उचित युक्ति से इस विद्या को सीख कर काम बनाकर पीछे आ जाऊँगा सो आप मेरे इस वियोग से जरा सी भी शोक मत करना। उसकी यह बात सुन कुटुम्ब परिवार के लोगों ने भी उसे निर्ग्रन्थ दिगम्बर बनकर विद्या सीखने की आज्ञा दे दी।

इस प्रकार वह सूर्यमित्र ब्राह्मण विद्वान विद्या लाभ के लिये मुनीश्वर के पास जाकर नमस्कार कर बोला हे भगवन्! मैंने स्वार्थ सिद्धि के लिये यह निर्ग्रन्थ दिगम्बर भेष धारण किया है सो मुझे आप जल्दी से जल्दी वह विद्या दे दीजिये। भविष्य में होने वाली घटनाओं के प्रत्यक्ष ज्ञाता मुनिराज भी इससे बाह्य परिग्रह छुड़ा स्वर्ग मोक्ष लक्ष्मी को वशीभूत करने वाले सारभूत मूल गुणों को दे दिया, तीन लोक में कल्याण करने वाली, जगत् में वंदनीय जैन दीक्षा उस ब्राह्मण को दी। सूर्यमित्र ब्राह्मण विद्वान ने मुनि को नमस्कार कर प्रार्थना की कि हे भगवन् वह विद्या अब मुझे दया करके दे दीजिए तब मुनिराज ने कहा कि विद्वान! क्रियाकलाप के पाठ और तप के बिना वह विद्या सिद्ध नहीं होती है। केवल नग्न होने से ही विद्या सिद्ध थोड़े ही हो जाती है। तब उस ब्राह्मण ने बड़ी भारी उद्यम से बुद्धि लगाकर गुरु से चारों अनुयोगों का पढ़ना प्रारंभ किया। त्रेसठ शलाका पुरुषों के पूर्व भवादिक सुख सामग्री, आयु, वैभव आदि का सूचक, पुण्य पाप का फल प्रकट करने के लिये सिद्धान्त और धर्म का कारण प्रथमानुयोग उसने पढ़ा। लोक अलोक का विभाग, उसका संस्थान, सात नरकों का दुःख, स्वर्गादि के सुख, संसार की स्थिति का

दीपक ऐसा करणानुयोग उसने गुरु के मुख से पढ़ा। मुनिराजों और गृहस्थों के आचरण, महाव्रतों अणुव्रतों शीलव्रतों, इनके फल आदि को बतलाने वाला चरणानुयोग योगीराज ने उसे पढ़ाया और छह द्रव्य, सात तत्व, पंच मिथ्यात्व, सत्यासत्यमतों का परीक्षा, प्रमाण, नय आदि को बतलाने वाला द्रव्यानुयोग भी उसे पढ़ाया। द्रव्यानुयोग के शास्त्रों को पढ़ने से वह सूर्य मित्र ब्राह्मण विद्वान् सम्यग्दृष्टि हो गया। अब उसके हृदय में हेयोपादेय का ज्ञान हो गया तब उसने धर्म अधर्म, शुभ, अशुभ तथा जैन धर्म, अन्य धर्म का भेद अपने निर्मल चित्त में अच्छी तरह जानकर, विचार किया कि जिनेन्द्र भगवान के मुख से निकला जैनधर्म ही सारभूत और महान है एवं स्वर्ग मोक्ष का देने वाला है।

जैनमत को छोड़कर अन्य सारे मत स्वार्थी लोगों द्वारा बनाये हुये और निन्दनीय हैं जो कि अब तो मुझे विष के समान दिखते हैं। जैन धर्म को छोड़कर सब मत मतांतर नरक पहुँचाने वाले हैं। संपूर्ण जीवाजीवादि पदार्थ तत्वयुक्त, महान सत्य हैं और दर्शन, ज्ञान के कारण एवं सर्वज्ञ भगवान द्वारा प्रणीत हैं। मैंने कुमार्ग गामियों द्वारा कहे हुये असत्य, अशुभ कुतत्वों को पढ़ने में वृथा ही इतना समय लगा दिया, जिसका खेद है मति और श्रुत ये दो परोक्षज्ञान ही ऐसे हैं जिनमें समस्त चराचर का ज्ञान हो जाता है। अवधिज्ञान तो यहाँ ऐसा है जिससे सारा जगत्, रूपी पदार्थ तथा भवांतर प्रत्यक्ष दिख जाते हैं।

सूक्ष्म पदार्थों को दिखलाने वाला मनः पर्ययज्ञान भी प्रत्यक्ष ज्ञान है, यह तप से होता है और योगीराजों के ही होता है। घातियाकर्मों के नाश से उत्पन्न होने वाला, आत्मा में उत्पन्न, तीन जगत् को देखने के लिए दीपक के समान, विश्व का प्रत्यक्षदर्शी केवलज्ञान है। इन पांच प्रकार के ज्ञानों को जिससे कि जगत् के पदार्थ स्पष्ट होते हैं कोई भी विद्वान् यहाँ किसी को भी नहीं दे सकता। ये ज्ञान तो ज्ञानावरणी कर्म के क्षयोपशम से श्रेष्ठयोगियों के स्वयमेव ही होते हैं। मैंने अपने हित के लिये उत्तम कार्य किया, जो कि ज्ञान के लोभ से संयम धारण कर लिया। जैसे कोई कंदमूलादि ढूंढने वाला जंगल में

किसी बड़ी धरोहर को प्राप्त कर ले वैसे ही ख्याति लाभ पूजा के लोभी मैंने यह निर्ग्रन्थ दिगम्बर जैन दीक्षारूपी धरोहर पा ली है। इस योगीराज ने भी मेरी हित की दृष्टि से ही जगत् की कल्याणकारिणी यह दीक्षा मुझे दी है और मैंने ज्ञान की आशा से इसे प्राप्त कर लिया है। आज इस जैन दीक्षा में कृतकृत्य होकर मोक्ष मार्ग का पथिक बन गया और पापों से दूर हटकर पवित्र होता हुआ तीन जगत् में पूज्य हो रहा हूँ। बड़े भारी भाग्य के उदय से मैंने सम्यग्दर्शन - ज्ञान चारित्रमय यह बोधि प्राप्त की है जो जिन शासन से ही प्राप्त हो सकती थी । भुक्ति मुक्ति का देने वाला एक निर्दोष जैनधर्म ही है, यही गुणों की खान और जगत् का स्वामी है। जिसे मैंने काललब्धि से पा लिया है। ये निर्ग्रन्थ गुरु ही दुस्तर संसार से स्वयं तिरने एवं अन्य लोगों को तिराने में समर्थ हैं, जिन्हें किसी पुण्य योग से धर्म बुद्धि द्वारा मैंने प्राप्त किया हैं, मिथ्यामार्ग में लगकर मैंने स्नानतपर्णादि द्वारा संक्लेश को पाकर इतना समय वृथा ही गवां दिया । जैन धर्म से पृथक रहने वाले ये मिथ्यादृष्टि मूर्ख कुमार्ग में रत होकर वृथा ही धर्म के लिये दुर्भाग्य से प्रयत्न करते हैं। मैं तो बड़ा भाग्यशाली हूँ जो मोक्षमार्ग का बटोही बनकर मैंने जगत् में सारभूत जिनशासन ग्रहण कर लिया है।

ज्योतिमंडल में सूर्य, धातुओं में सुवर्ण, पत्थरों में चिंतामणि रत्न, वृक्षों में कल्पवृक्ष, स्त्रियों में शीलवती नारी, धनियों में दाता, तपस्वियों में विद्वान सदाचारी जितेन्द्रिय तपस्वी बड़ा होता है। उसी प्रकार जितने भी धर्म संसार में कहलाते हैं उनमें जिनेंद्र देव प्रणीत जैन धर्म ही महान और सेवनीय है और उसके द्वारा बतलाया हुआ मार्ग ही उत्तम मार्ग है। जैसे गाय का सींग दुहने से दूध, सर्प के मुख से अमृत, अनाचरण से कीर्ति और अभिमान से महत्व प्राप्त नहीं होता उसी तरह कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु, कुधर्म और कुमार्ग से कभी श्रेष्ठ कल्याण की प्राप्ति नहीं होती ।

इस प्रकार वह सूर्यमित्र पुरोहित विद्वान हस्तरेखा की तरह संपूर्ण हेयोपादेय को जानकर परम दृढ़ वैराग्य को प्राप्त हो गया। ज्ञान से

जिनशासन और संयम में अनुरक्त हो तपश्चरण करने और मुनिराज के आचरण को पालन करने में पूर्ण तत्पर हो गया । इस तरह वह सूर्य मित्र गुणों के समूह से बढ़कर मुनि होता हुआ यशस्वी हो मोक्ष गामी बन गया । हे भव्य जीवों ! इसलिये प्रयत्न पूर्वक संपूर्ण शास्त्रों का अध्ययन करो जिससे तीन जगत् में पूज्यता प्राप्त होती है। यह सम्यग्ज्ञान ही पाप को दूर करने वाला शुभ घर है। ज्ञानवान ज्ञान को ही प्राप्त करते रहते हैं। ज्ञान से ही मुक्तिवधू दिखती है, इसलिये सम्यग्ज्ञान को मस्तक झुकाकर मेरा नमस्कार है। ज्ञान के बराबर दूसरा उत्तम नेत्र नहीं है, ज्ञान का फल मोक्ष है इसलिये ज्ञान में चित्त लगाता हूँ सो हे ज्ञान ! मुझे ज्ञानी बना ।

(इस प्रकार भट्टारक श्री सकलकीर्ति आचार्य विरचित सुकुमाल चरित्र में सूर्य मित्र पुरोहित द्वारा जिनदीक्षा ग्रहण करने के उपाय को वर्णन करने वाला चतुर्थ सर्ग पूर्ण हुआ ।)

अथ पंचम सर्ग

समस्त अंतरंग बहिरंग परिग्रहों से रहित, श्रेष्ठ गुणों की संपदा से युक्त, सबसे महान्, जगत् के वंदनीय और विद्या के समुद्र परमेष्ठियों को मैं नमस्कार करता हूँ। इसके अनंतर ये सूर्यमित्र मुनिराज ग्राम नगर खेट वन आदि में अपने गुरु के साथ विहार करते हुये चंपापुर आये । यह चंपानगरी या चंपापुर वासुपूज्य भगवान् की निर्वाण भूमि है। जिसकी स्तुति, प्रदक्षिणा व नमस्कार करके आचार्य महाराज के साथ निर्वाण भक्ति का पाठ किया । वासुपूज्य स्वामी के गुणों के समूह और निर्वाण लाभ की भावना से जो इन सूर्यमित्र महात्मा महामुनि के परिणामों में विशुद्धि आई, उससे अज्ञानरूपी अंधकार का नाशक, तीन लोक के पदार्थों का प्रकाश करने वाला उत्तम अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया । वास्तव में जो निःस्पृह होते हैं उनके सारी अभीष्ट ऋद्धियाँ तपश्चरण के प्रभाव से स्वयमेव प्रकट हो जाती हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

श्री सुधर्माचार्य नें इन सूर्यमित्र मुनिराज को ज्ञान - विज्ञान से संपन्न, गुणों के सागर, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र से, विशुद्ध आत्मा वाले संघ का भार उठाने में समर्थ, महान तपस्वी, महान तेजस्वी, महाध्यानी, महाव्रती, महान जितेन्द्रिय, महान शीलयुक्त महान योगी, महान् हृदय वाले संसार के प्राणियों का हित चाहने वाले, जगत् को सुखी करने में समर्थ, निःस्पृह, सम्पूर्ण, अन्य शिष्यों के गुणों से बड़े जानकर समस्त संघ की साक्षी पूर्वक आचार्य पद देकर व आप एकल विहारी हो गये । अब ये सुधर्म स्वामी आचार्य पद के झंझट से हटकर घोरातिघोर तपश्चरण करते हुये नाना प्रकार के देशों, नगरों और ग्राम आदि में विहार करते हुये ध्यानध्ययन में

तत्पर, प्रमादहीन, जितेन्द्रिय, धीर वीर, मौनव्रत धारी, महान आत्मा, महामुनि वाराणसी (बनारस - काशी) नगर पहुँचे । उसके बाहर के स्थान पर प्रासुक निर्जन स्वच्छ स्थान पर हर्ष पूर्वक आत्मध्यान के साथ योग साधन किया । आत्मध्यान और योग साधन के योग से मोक्ष मार्ग में ले जाने वाली क्षपक श्रेणी मांडकर, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय इन चार घातिया कर्मों को नष्ट कर मुक्तिरूपी लक्ष्मी के सुख के लिये दर्पण के समान नौ केवल लब्धियों के साथ केवलज्ञान प्राप्त कर लिया । केवलज्ञान होते ही इन्द्रादि देवों ने पूजा की और वहीं पर संपूर्ण अघातिया कर्मों को भी नष्ट कर शरीर त्याग कर दिया और अनन्त सुख के सागर समस्त लोक के अग्रभाग में स्थित, नित्य, गुणों के खान, श्री सुधर्म स्वामी ने निर्वाण को प्राप्त किया ।

अब सूर्य मित्र आचार्य ने भव्य जीवों के कल्याण के लिये धर्मोपदेशादि देते हुये धर्म प्रभावना करते हुये ईर्यापथशुद्धि से अनेक स्थानों में विहार करते एक दिन कौशांबी नगरी में आहार के लिये प्रवेश किया सो इनके गृहस्थावस्था के भांजे तथा शिष्य अग्निभूति ने संपूर्ण परिग्रहों से रहित निर्ग्रन्थ अवस्था में देख दुर्लभ धरोहर की तरह परमानन्द को प्राप्त हो तीन बार "तिष्ठ तिष्ठ तिष्ठ आहार जल शुद्ध" यह कह कर उनको पड़गाहा और नवधा भक्तिपूर्वक दाता के सात गुणों से युक्त हो, अग्निभूति ने विधि पूर्वक ज्ञान की वृद्धि करने वाला प्रासुक, सरस और मधुर आहार देकर परम प्रसन्नता प्राप्त की । जब वीतरागी महामुनि श्री सूर्यमित्र आचार्य आहार ग्रहण करके आत्मध्यान के लिये जाने लगे तो अग्निभूति ब्राह्मण ने कहा कि भगवन् ! वायुभूति मेरा भाई क्रोध, मायाचार आदि अनाचार करता हुआ धन पैदा करता है और आपकी निंदा भी करता रहता है सो उस दुष्ट को घर जाकर उसे आप समझाइये क्योंकि तीन जगत् के जीवों को समझाकर मार्ग में लगाने के लिये आप ही समर्थ हैं। आचार्य महाराज ने कहा कि उसके पास जाना अभी ठीक नहीं क्योंकि वह स्वभाव से ही कठोर परिणाम वाला है। सो हमें देखकर ही वह निंदादि द्वारा दुर्धर पाप का बंध करेगा, जिससे वह चिरकाल तक दुःखी होता

हुआ दुर्गति में भ्रमण करता रहेगा । आचार्य महाराज की यह बात सुनकर अग्निभूति ने कहा कि स्वामिन् ! मेरे अनुरोध से ही आपको उसके पास चलना और समझाना चाहिये और सिर्फ होनहार होगा वैसा हो जायेगा। अग्निभूति की यह बात सुन जगत् के कल्याण के लिये सदैव तैयार रहने वाले, सबके साथ समान भाव रखने वाले आचार्य महाराज अग्निभूति के आग्रह से उसके साथ वायुभूति के पास चले गये । वायुभूति पापी ने पाप के उदय से उन्हें देखकर, मुनि जानकर कटुक और खोटे वचनों से क्रोधित हो उनकी बड़ी भारी निन्दा की और कहा कि तू वही पुराना दुष्ट क्रूर कंजूस ब्राह्मण है जिसने हम दोनों से (वायुभूति अग्निभूति से) भीख मंगवाई थी और अब नग्न हो गया है। इत्यादि कटुवाक्यों से महामुनि की निंदा करके अशुभ तिर्यंच गति को बांध लिया, सो ठीक ही है, कि जिसका जैसा शुभ या अशुभ होनहार होता है वैसी ही उसको सारी सामग्री मिल जाती है।

सूर्य मित्र आचार्य महान योगी थे, क्षमादि गुणों के धारक थे, सो समता भाव की अधिक वृद्धि के लिये जो उसने निंदा करके आक्रोश परीषह दी थी उसे सहते हुये वे वन को चले गये । जब वायुभूति ने इस प्रकार मुनिराज आचार्य की निंदा की तो अग्निभूति को बड़ा ही दुःख हुआ । उसने हृदय में संवेग धारण कर विचार किया कि यह दुष्ट बुद्धि पाप के उदय से कैसा महान पापी है जिसने इन महामुनि की अपने ही को दुर्गति देने वाली निंदा की । अथवा दोष भी क्या है? वास्तव में तो मैं ही पापी हूँ, जो मैं इनको जबर्दस्ती वायुभूति के पास ले गया हालांकि भविष्य के ज्ञान के कारण ये नहीं जा रहे थे, इसलिये मुनि निंदा से जो पाप लगा है, उसका मैं भी भागी हूँ, क्योंकि कृत, कारित और अनुमोदन इन तीनों से बराबर ही पाप अथवा पुण्य का बंध होता है। अब मुझे इस पाप का प्रायश्चित करना चाहिये जो यही है कि इस पाप की विशुद्धि के लिये जेल के समान घर को और शत्रुओं के समान बंधुजनों को जान तथा छोड़कर संयम धारण करूँ । उस भाई से मुझे क्या लाभ है जो अपने गुरु की ही निंदा करता हो? अथवा उस घर या कुटुम्ब से क्या करना है

जिनसे अशुभ कर्मों का आस्रव होता है। अरिहंत भगवान, मुनि तथा शास्त्रों की भक्ति के समान कोई उत्तम धर्म नहीं और इनकी निंदा के अतिरिक्त नरक में पहुंचाने वाला कोई पाप नहीं । इस घटना तथा इस विचार से उस पुण्यात्मा के हृदय में वैराग्य भाव और भी दूना हो गया । इस अग्निभूति ने अब इस संसार के भोगों से वैराग्य धारण कर, गृहस्थाश्रम को शत्रु के समान समझ कर तज दिया । अंतरंग एवं बहिरंग परिग्रह को छोड़ और देवों के भी दुर्लभ महाव्रतों को मन वचन काय की शुद्धि से धारण किया जो कि किसी सौभाग्य से ही प्राप्त होते हैं। अग्निभूति महाव्रतों के धारणार्थ जब वन को चला गया, तो उसकी भार्या सोमदत्ता को बड़ा दुःख हुआ वह उदास होकर वायुभूति के पास गई और शोक की शांति के लिये उससे कहा कि तुमने दुष्टता से महामुनि की जो निंदा की उससे मेरा पति हृदय में वैरागी हो, दीक्षित हो गया है। जब तक ये बातें किसी को मालूम न पड़े तब तक अपना कर्त्तव्य है कि हम सब चलकर उनको समझा कर ले आवें । यदि हमने देर की तो फिर लाना असंभव हो जायेगा । सोमदत्ता की बात सुनकर वायुभूति को बड़ा भारी क्रोध आया और उसने क्रोध में अंधे हो अपनी भौजाई के मुँह पर लात मारी, इस तरह की मार फटकार से सोमदत्ता को भी अपना और दूसरे का नाश करने वाला क्रोध आ गया । जिससे उसने निंदनीय कर्म कराने वाला, जगत् में निंद्य निदान बंध किया और कहा कि मैं असमर्थ अबला हूँ सो इस समय तो अपराध के फल स्वरूप तेरा कुछ भी बिगाड़ मैं कर नहीं सकती किन्तु अगले जन्म में मैं ऐसी बनूंगी, जो तेरे पांवों को तोड़ - तोड़ कर खाऊंगी, यह निश्चय समझना । सो ठीक ही है कि - दुर्बुद्धि जब क्रोध से अंधे हो जाते हैं तब हानि लाभ कुछ नहीं देखते इसलिए बुद्धिमानों को चाहिये कि दोनों लोक बिगाड़ने वाले, धर्म और कल्याण को नष्ट करने वाले इस क्रोध को क्षमारूपी वाणों से नष्ट करना चाहिए । वायुभूति भी उस मुनिनिंदा की घटना के सातवें दिन ही महान पाप के उदय के उदम्बर कुष्ठ से पीड़ित हो गया (जो कि १८ प्रकार के कोढ़ों में एक असाध्य कुष्ठ (कोढ़ है) इस तरह वह वायुभूति महान दुःखी हो

गया सो ठीक ही है कि महान पापों के संचय से परभव की तो क्या बात? इस भव में भी महान क्लेशों और दुःखों को वे मूर्ख पापी भोगते हैं। वह वायुभूति ब्राह्मण विद्वान महाकुष्ठ नामक महान व्याधि से अत्यंत पीड़ा को भोग आर्तध्यान पूर्वक मर गया और उसी नगरी में गधी हो गया। सो ठीक ही है, देव, गुरु, शास्त्र और धर्मात्माओं की निंदा करने वालों की ऐसी ही दुर्गति होती है - ऐसे लोगों का, वर्तमान, होने वाला (भविष्य) तथा अतीत का सारा शुभ व सुख पाप से नष्ट हो जाता है इसलिये यह जानकर चाहे प्राण ही चले जायें तो भी निर्दोष अरिहंत भगवान, गुरु, मुनिराज श्रावक तथा धर्मात्माओं की निंदा कभी नहीं करनी चाहिए। उस गर्दभी (गधी) ने भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदि के अनेकों दुःखों को सहन किया। पाप के उदय से थोड़ी ही आयु में गधी दुःख से भरी हुई पर्याय से भी छूटकर उसी नगर में शूकरी (सुअरी) हो गई जो कि गधी की पर्याय से भी निकम्मी है।

उस शूकरी की पर्याय में भी उसने भूख आदि महान दुःख तथा जनता से ताड़न मारण आदि सहकर किसी मालिक के न होने से सर्वथा पराधीन वह अत्यन्त कष्टों के साथ संक्लेशता से मर गई और इसी चंपानगरी में विकराल, भंयकर मुँहवाली, क्रूर, दुःख से व्याकुल, चांडाल के घर में कुक्कुरी (कुत्ती) हो गई। इस पर्याय में भी भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदि अनेक कष्ट भोगकर अत्यन्त क्लेशपूर्वक मरण कर उसी चांडाल के घर कौशांबी नाम की चांडाली के गर्भ से अंधी, दुर्गंधि से युक्त, अत्यन्त कुरूप चांडाली हुई, यह सब मुनिनिंदा जनित पाप का उदय था।

किसी समय धर्मध्यानपरायण सूर्यमित्र और अग्निभूति मुनिराज भूमंडल पर विहार करते करते वहाँ आ गये। सूर्यमित्र मुनिराज के तो उपवास था सो वह तो वहीं वन में ठहर गये किन्तु अग्निभूति मुनिराज शरीर की स्थिति के अर्थ आहार के लिये वन से चंपानगरी में आये। उन्होंने मार्ग में जाते हुये बहुत वृक्षों के मध्य, धूल से सने हुए वस्त्रों से युक्त जामुन के वृक्ष के नीचे खड़ी हुई उस दुःख से पीड़ित चांडाली को देखा। उस

चांडाली को देखते ही वे अग्निभूति महामुनिराज भी कुछ दुःखी हो गये और स्नेह तथा दुःख से उनकी आँखों में आँसू आ गये। श्री अग्निभूति महाराज उस चांडाली के देखने से अपनी ऐसी अवस्था देख वन को वापिस लौट गये श्री अग्निभूति मुनिराज ने अपने गुरु महाराज को नमस्कार कर पूछा कि महाज्ञान के धारण करने वाले गुरु महाराज !

चांडाली के देखने से मुझे शोक क्यों हुआ, मेरी आँखों में आँसू क्यों आ गये? इन शोक आदि दुःखों के होने का क्या कारण है? सो कृपा करके मुझे बतलाइये। अग्नि भूति मुनिराज के इस प्रश्न को सुन गुरु महाराज श्री सूर्य मित्र मुनिराज बोले कि धीमान् ! यह चांडाली तुम्हारे भाई वायुभूति का ही जीव है। इसने मेरी निंदा की थी, उसी निंदा जनित पाप से वायुभूति पर्याय में भी महान कुष्ठ (कोढ़) व्याधि के दुःख भोगे और मरकर अनेक तिर्यंच गति में रुलकर जगत् में निंदनीय नेत्रहीन कुरुपा चांडाली हुआ है। पुराने जन्म के स्नेह संबंध से यह शोक और दुःख तुमको हुआ है। प्राणियों के भव - भव में स्नेह और बैर के भाव प्रकट होते रहते हैं। अग्निभूते ! तुम एक बात और भी सुनो और वह यह है कि तुम्हारे भाई वायुभूति के जीव (इस चांडाली) की आसन्न भव्यता बहुत निकट है अर्थात् आ ही गई है इसका मरण आज ही होने वाला है सो तुम वापिस जाओ और उसे संबोधन दे कर युक्तिपूर्ण वाक्यों से उसके कल्याण के लिये उसे व्रतपूर्वक संन्यास ग्रहण कराओ।

श्री गुरु महाराज के ये वाक्य सुनकर परोपकारी अग्निभूति महामुनि ने शीघ्र ही वहाँ जाकर उत्तम वाणी द्वारा संबोधते हुये कहा- बेटी ! तू देव, गुरु, शास्त्र की निंदा के पाप से तिर्यंच गति के दुःख भोगकर अब इस नीच कुल में पैदा होकर महान दुःख भोग रही है। इसलिये तू पाप को नष्ट करने के लिये अब धर्म को ग्रहण कर। उस धर्म की सिद्धि के लिये मद्य, मांस, मधु और पाँच उदंबर फलों को त्याग कर। खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय इस प्रकार चारों प्रकार के आहार का त्याग कर दे। पाँच अणुव्रत,

तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ग्रहण करले और तू मेरा कहना मानकर सन्यास ले ले क्योंकि तेरा आज ही मरण होने वाला है, इसलिये अब तू अपने कल्याण के लिये मैंने जो कहा है सो शीघ्र कर ।

उस चांडाली ने भी श्री अग्निभूति मुनिराज के वचन से वैसा ही करके व्रत ग्रहण किये और भोजन - पान आदि का त्याग कर सन्यास धारण कर लिया । इसी समय इस नागशर्मा ब्राह्मण की स्त्री त्रिदेवी, पुत्री की प्राप्ति की इच्छा से उत्सव सहित इन नागों को पूजन के लिये आई - जो उसी मार्ग से जा रही थी कि वायुभूति के जीव उस चांडाली ने जिसने कि अग्निभूति मुनिराज के उपदेश से व्रतपूर्वक सन्यास धारण किया था गाजे बाजे आदि की आवाज सुन यही निदान किया कि मैंने जो व्रतपूर्वक सन्यास लिया है उसके फल से इस नागशर्मा की स्त्री त्रिदेवी के कन्या हो जाऊँ और दूसरी गति नहीं पाऊँ। जैसे कोई मूर्ख रत्न देकर काँच लेना चाहे, ऐरावत हाथी बेचकर गधा खरीदना चाहे, सुवर्ण के बदले लोह का टुकड़ा लेना चाहे वैसे ही उस ज्ञान हीन ने स्वर्ग की संपदा के देने वाले सन्यास और व्रत से इस प्रकार का निदान किया सो यह सब कुछ कुबुद्धि का ही फल है।

जिस व्रत पूर्वक सन्यास धारण करने से स्वर्ग और परंपरा से मोक्ष तक की प्राप्ति होती है उससे इसने उस त्रिदेवी के गर्भ से स्त्री पर्याय में कन्या होने की इच्छा की - सो इस निदान बंध से वह चांडाली मरकर नागश्री कन्या के रूप में उत्पन्न हुई है परन्तु उसमें व्रत संस्कार की वासना थी जिससे अब भी इसने व्रत ग्रहण किये हैं। सो यही नागश्री आज यहाँ नाग पूजन हेतु आई थी। हम दोनों (सूर्य मित्र और अग्निभूति) ने इसे व्रत ग्रहण करा दिये हैं। वायुभूति का जीव पर्यायें भोगकर यह नागश्री हुआ है। वे श्री सूर्यमित्र मुनि महाराज श्री चन्द्रवाहन राजा से कहते हैं कि - राजन् ! मनुष्य अपने पाप से ही दुर्गतियों में भ्रमण करते हैं और धर्म से उत्तम गति में जाते हैं एवं पुण्य पाप रूप दोनों प्रकार के परिणामों तथा आचरण से मध्यम गति (मनुष्य पर्याय) प्राप्त होती है। धर्म से ही धर्मात्मा लोग इन्द्र, अहमिन्द्र के

उत्तम पद प्राप्त करते हैं और पापी लोग पाप के फल से नरक व तिर्यंच गति प्राप्त करते हैं। तीन जगत् के स्वामी तीर्थंकर भगवान् की संपूर्ण संपदा भी धर्म से ही मिलती है और दुर्बुद्धि लोग पाप से दरिद्रता जैसा महान पाप का फल भोगते हैं। हे राजन् ! तीन लोक में जितने भी कल्याण और सुख के साधन हैं वे सब धर्म से ही प्राप्त होते हैं और पापी लोग पाप से ही समस्त दुःखों का समूह प्राप्त कर लेते हैं।

धर्म से ही जिनेन्द्र भगवान आदि पुरुषोत्तम होते हैं और पाप से नौकर चाकर गरीब और भिखारी बनते हैं, चाहें कोई वस्तु कितनी ही दूर और दुर्लभ हो किन्तु अपने को प्यारी (इष्ट) हो, तो वह तीनों लोकों में कहीं भी हो धर्म से प्राप्त हो जाती है और पाप से हथेली में आई हुई वस्तु भी चली जाती है। इस प्रकार धर्म से चतुर विद्वान लोग महान सद्गतियों को पाते हैं और पापी कुगतियों में रुला करते हैं जो कि सब दुःखों की खान होती हैं। यह विश्वास कर विद्वानों को चाहिये कि धर्म का पालन करें जो कि समस्त सुख समृद्धि और मोक्ष का साधन है और पाप कार्यों को मन, वचन, काय की विशुद्धि पूर्वक छोड़ें । धर्म ही ऐसा साधन है जो देव, नरेन्द्र, देवेन्द्र, आदि पदों का देने वाला है। इसलिये मैं धर्म का सेवन करने वाला हूँ। मैं धर्म का आचरण करता हूँ और धर्म के लिये तप ही करता हूँ। धर्म के अतिरिक्त ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसका मैं सहारा ले सकूं इसलिये धर्म के गुणों का ही मैं सेवन करता हूँ। मैं धर्म में चित्त लगाता हूँ इसलिये हे धर्म ! मेरे संसार भय को दूर करो ।

(इस प्रकार भट्टारक श्री सकलकीर्ति आचार्य विरचित सुकुमाल चरित्र में नागश्री के पूर्व के पूर्वभवों का वर्णन करने वाला पाँचवा सर्ग समाप्त हुआ ।)

अथ षष्ठ सर्ग

गुणों के समुद्र, जगत् के स्वामी, लक्ष्मीयुक्त और महान ऐसे अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु परमेष्ठियों को मुक्ति की प्राप्ति के लिये मेरा प्रतिदिन नमस्कार है।

योगीराज मुनीश्वर की वाणी से पाप के फल से उत्पन्न दुःखों से पूर्ण पूर्व भवों के घटनाचक्र को सुन श्री चन्द्रवाहन राजा, नागशर्मा तथा अन्य नागरिक श्रोताओं को संसार के भोगों तथा शरीर, गेहादि पदार्थों में वैराग्य उत्पन्न हो गया और हृदय में विचार किया कि जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहा हुआ जैनधर्म ही महान शुभ है, दयामयी तथा सत्य है। अन्य मूर्खों द्वारा कहा हुआ धर्म तो जीव हिंसक है। भक्ति और मुक्ति के कारण होने से जिनेन्द्र देव ही केवल सर्वज्ञ हैं वे ही निर्दोष और महादेव भी हैं और सब तो दोषों से भरे हुए हैं। अंगों और पूर्वों में जिनका वर्णन है ऐसे सर्वज्ञ जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रणीत शास्त्र ही सच्चे और धर्म के मूल हैं। लोक, अलोक के ज्ञाता, संसार के बंधु, चतुर निर्ग्रन्थ गुरु ही पूज्य हैं और विषयों से आकुलित जन पूज्य नहीं हैं। तीन जगत् का दीपक और तीन काल की सूचना देने वाला जैसा निर्ग्रन्थ दिगम्बर योगियों का ज्ञान होता है वैसा अन्य मिथ्यादृष्टियों का नहीं है। जैसे कोई विष खाकर भी जीने की इच्छा करता है वैसे ही कुमार्गगामी मिथ्यादृष्टि जीव हिंसा से कल्याण की इच्छा करते हैं। जैसे कोई साँप को माला समझकर गले में डालता है वैसे ही खोटे मार्ग में जाने वाले धर्म बुद्धि से पितृत्तर्पणादि पाप का सेवन करते हैं। अन्तरंग और बहिरंग इस प्रकार दोनों

प्रकार के मैल छूट जाने से केवल जैनधर्मी ही शुद्ध होते हैं बाकी सब अन्य मिथ्यादृष्टि ऊपर से जल से धोये हुये मदिरा के घड़े के समान हैं। मिथ्यात्व और मोहरूपी मैल से लिपटे हुये जो केवल स्नान से अपने को शुद्ध मानते हैं वे बुद्धि भ्रष्ट हो जाने से मृग - मरीचिका में पानी समझते हैं।

धर्म के बिना हमारे इतने दिन खोटे मतों के आश्रय से वृथा ही चले गये । आज किसी अत्यन्त पुण्य के योग से सन्मार्ग जैनधर्म का लाभ हुआ है। इस प्रकार के विचार और निमित्त से उस नागशर्मा पुरोहित के हृदय में वैराग्यभाव और भी दूना हो गया और मुनिराज के वचनरूपी अमृत से उसको परम निर्वेगभाव की प्राप्ति हो जाने से उसने जो पहले मिथ्यात्वरूपी विष का भक्षण किया था उसे निकालकर अन्तरंग और बहिरंग परिग्रह को छोड़ जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली ।

उसी समय साथ में जो अन्य ब्राह्मण थे उनमें से अनेकों ने मुनिराज के वचनों से श्रेष्ठ धर्म का माहात्म्य जानकर कुमार्ग का परित्याग कर दिया और संसार देह भोगादि से विरक्त हो दोनों प्रकार के परिग्रह को छोड़ मुनिपद धारण कर लिया । श्री नागशर्मा पुरोहित की सुपुत्री नागश्री ने भी अपने समस्त पूर्वभव के वृत्तांत को सुन अनाचार और पापों से डरकर वैराग्य रूपी भूषण को धारण कर लिया । उस अत्यन्त विदुषी पंडिता ने एक साड़ी के अतिरिक्त संपूर्ण परिग्रह को छोड़कर बालकपने में ही आर्यिका की दीक्षा धारण करली । त्रिदेवी आदि जो अत्यंत समझदार और विलक्षण ब्राह्मणियाँ थीं उन्होंने भी धर्म श्रवण करने से मोहरूपी शत्रु को पछाड़ कर वैराग्य से स्वर्ग और मोक्ष के सुखों की प्राप्ति के लिए शीघ्र ही समस्त परिग्रहों को छोड़ कल्याण की खान और मुक्ति की माता स्वरूप, सारभूत जैन दीक्षा धारण कर ली ।

चंपा नगरी के राजा श्री चंद्रवाहन ने भी इस कथा के सुनने से संसार देह भोगादि से विरक्त हो अपने पुत्र लोकपाल को राज्य का भार सौंप दिया और स्वयं मुनिदीक्षा धारण करली । इस राजा के साथ अन्य कितने ही

लोगों ने भी संवेग धारण कर लिया । अन्तः पुर में रहने वाली कितनी ही रानियों तथा महिलाओं ने भी संवेग में तत्पर हो आर्यिका दीक्षा लेली । बहुत से नागरिकों ने उस कथा रूपी अमृत के पीने से मिथ्यात्वरूपी विष को उगलकर जैनधर्म स्वीकार कर लिया । कितने ही लोगों ने महाव्रत लेकर मुक्तिलाभार्थ मुनिपद धारण कर लिया और कितने भक्त जीवों ने अणुव्रत लेकर श्रावक दीक्षा ले ली तथा कितने ही पुरुषों ने जैन धर्म में अपनी हार्दिक श्रद्धा रख श्रावक पद धारण किया ।

इस प्रकार श्री सूर्यमित्र मुनिराज का बड़ा भारी संघ हो गया । श्री मुनिराज ने धर्मप्रभावना और धर्म प्रसार के लिए इस बड़े भारी संघ के साथ विहार करना प्रारंभ किया । सभी नवीन दीक्षित साधुओं ने गुरु के वचन से यत्नपूर्वक उत्तम ज्ञान की प्राप्ति के लिए अंग पूर्वों का पठन - पाठन प्रारंभ किया और कर्मरूपी वन को दावानल के समान जो बारह प्रकार का तपश्चरण है उसे करना प्रारंभ किया । इस प्रकार सांसारिक मोहरूपी शत्रु के विनाश के लिए अपने गुरु के साथ - साथ सभी तपश्चरण में लीन हो गये । वे सब सूने मकानों, गुफाओं, पर्वतों आदि निर्जन और शांत स्थानों में ध्यान और अध्ययन के लिए प्रमाद रहित हो, रहने लगे ।

उन्हें मार्ग में चलते जब सूर्य अस्त हो जाता था तब वे जीव दया के लिए वहीं कायोत्सर्ग पूर्वक खड़े रह जाते थे । वे सभी साधु मुनिराज स्थिर चित्त हो यत्नपूर्वक धर्मध्यान और शुक्लध्यान में लगे रहते थे । आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान का तो उनके काम ही क्या था? वे श्रावकों को स्वाध्याय, देवपूजादि आवश्यकों के पालन करने का धर्मोपदेश ही देते थे, किसी की विकथा का उनके पास काम नहीं था ।

वे सदैव अतिचार रहित चंद्रमा के समान निर्मल चारित्र को पालते थे और सारभूत मूलगुणों व उत्तर गुणों का यत्नपूर्वक पालन करते थे । वे समस्त मुनिराज पाप, स्त्रियों के रूप और मिथ्यात्ववर्धक स्थानों के देखने में अंधे थे और जिनेन्द्र भगवान् की मूर्ति, सिद्धभूमि, धर्मस्थान आदि

के देखने में नेत्रसहित थे । खोटे मिथ्यात्ववर्धक किन्तु लोक में तीर्थस्थान कहे जाने वाले मार्गों के जाने में पंगु (पांव रहित) थे । उत्तम आत्महितैषी तीर्थ स्थानों की यात्रा तथा गुरु उपासना आदि धर्म कार्यों में पांव - सहित और शीघ्रगामी थे।

इस प्रकार श्री सूर्यमित्र आचार्य अपने संघ के साथ भूमंडल में बिहार करते हुए मार्ग में लोगों को धर्मोपदेश द्वारा तृप्त करते हुए, धर्म में स्थापित करते हुए राजगृह नगर के प्रासुक उद्यान की भूमि में धर्म के प्रकाश के लिए एक दिन आ पहुँचे । कौशांबी नगरी का राजा अतिबल भी उसी समय अपने चाचा सुबल से मिलने के लिए वहाँ आया था । राजा अतिबल की सुबल राजा ने बड़ी मनुहार व आवभगत की थी सो थोड़े दिन दोनों राजाओं ने साथ ही निवास किया । वनपाल ने इन दोनों राजाओं से उद्यान में मुनि संघ के आने के समाचार कहे सो ये राजा सुनते ही मुनि वंदना के लिए उद्यान को चल पड़े ।

महान् दीप्तिऋद्धिधारी आचार्य को उद्यान में विराजमान देखकर नतमस्तक हो, नमस्कार कर, उत्तम सामग्री से पूजन कर, राजा सुबल बहुत ही आश्चर्यान्वित हो गया । राजा सुबल ने जब श्री सूर्यमित्र आचार्य महाराज की शरीर की कांति को जो कि सूर्य के तेजको भी तिरस्कृत करने वाली थी देखा तो बड़ा भारी प्रसन्न हुआ । राजा ने यह अतिशय देखकर हृदय में सोचा कि यह सारा जैन दीक्षा और तपस्या का चमत्कार है जो मेरा यह सूर्यमित्र नामका ब्राह्मण पुरोहित जिनदीक्षा और तपश्चरण के फलसे इस प्रकार का दीप्तरूप, दिव्यशरीर, महाज्ञानी, महातेजस्वी, कांति और ज्योति का पुंज, संघ नेता आचार्य हो गया । जब तप, संयम, ध्यान आदि से यहीं महान ऋद्धियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, तीन जगत् में मान्यता हो जाती है, प्रतिष्ठा सत्कारादि प्राप्त होते हैं तब परलोक में तो न मालूम उन महात्माओं को किस प्रकार की महान विभूति मिलती होगी? राज्यलक्ष्मी जो मनुष्य को प्राप्त होती है वह भी किसी तपस्या के फल से ही प्राप्त होती है यदि इस राज्य लक्ष्मी का

त्याग करके तपस्या की जाये तो अविनाशी सुख और मोक्षलक्ष्मी की प्राप्ति हो सकती है इसलिए इस राज्य लक्ष्मी को छोड़ने में अधिक विलंब करना ठीक नहीं । चतुर पुरुष वे ही होते हैं जो अपने कल्याण के कार्य में विलंब नहीं करते ।

इस प्रकार के विचार से सुबल राजा के हृदय में पूर्ण वैराग्य भावों की उत्पत्ति हो गई। संसार के विषय भोगादि से अरुचि हो गई । धर्म और धर्म के फल में अनुराग हो गया । उसने निश्चय कर लिया कि राज्य का यह अत्यंत खोटा भार अपने सर से उतार कर तपश्चरण का श्रेष्ठ भार लादना चाहिए । इस प्रकार उसने तपस्या के लिये तैयार हो अतिबल राजा से राज्यभार संभालने को कहा और कहा कि इस राज्य का भार तुम संभालो मैं अब संयम ग्रहण करता हूँ।

सुबल राजा की यह बात सुन राजा अतिबलने कहा कि बुद्धिमान् ! जिस राज्य के दोषों को आप जानकर छोड़ रहे हो उनसे ज्यादा दोष मैंने जान लिये हैं और जिस तपश्चरण, चारित्र और धर्म के गुण आपने जाने हैं उनसे भी अधिक ज्ञानरूपी निर्मल नेत्रों से मैंने जान लिए हैं इसलिए मैं इस अनर्थों के मूल राज्य के भार को उठाने में समर्थ नहीं हूँ और आपके समान ही कठिन और दुर्धर तपश्चरण करूँगा - क्योंकि इस संसार के राज्य से भी बड़ा मुक्ति साम्राज्य तपस्या से ही प्राप्त होगा ।

जब राजा सुबल ने यह अच्छी तरह जान लिया कि अतिबल संसार से उदासीन है और राज्य तक करना नहीं चाहता तो उसने मीनध्वज पुत्र को राज्य का भार सौंप दिया और आप अतिबल आदि अनेक लोगों के साथ संपूर्ण परिग्रह का त्याग महान मुनिपद धारण कर लिया ।

उन मुनिराजों सहित धर्म प्रभावना में तत्पर जगत् के बंधु हितकर श्री सूर्यमित्र आचार्य मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति के लिए नगर ग्राम वनादि में वहाँ से चल विहार करने लगे । नागश्री आर्यिका भी अपनी शक्ति को न छिपाकर निरतिचार संयम और तप पाल रही थी जब उसकी आयु केवल एक

मास शेष रह गई है, ऐसा जान लिया गया तो उसने समाधिमरण के लिए सब प्रकार के आहार का त्याग कर सन्यास धारण कर लिया । संपूर्ण क्षुधा तृषादि परीषहों को जीतकर उपवास रूपी अग्नि के संयोग से अपने समस्त शरीर को पवित्र और शुद्धकर चार प्रकार की आराधनाओं को साधकर धर्मध्यान रूपी रत्न के साथ समाधि पूर्वक प्राण छोड़े ।

नागश्री ने अपने मानव पर्याय से प्राण त्यागकर तप और सन्यास के प्रभाव से सुख की खान अच्युत स्वर्ग के रत्नमयी पद्मगुल्म विमान में महर्द्धिक दिव्यरूपधारी देव पर्याय प्राप्त की अर्थात् नागश्री का जीव पद्मनाभ नामक देव हुआ । नागश्री का पिता जो नागशर्मा पुरोहित था वह भी तपस्या और अंत में किये गये समाधिमरण के प्रभाव से उस अच्युत स्वर्ग में महर्द्धिक देव हो गया । नागश्री की माता जो त्रिदेवी थी और जो आर्यिका हो गई थी वह भी तप संयम के प्रभाव से अंत समय अनशनादि तप के कारण आत्मशुद्धिपूर्वक शरीर त्याग कर इसी पद्मनाभ देव के अंगरक्षक देवकी पर्याय में जा पहुँची । चन्द्रवाहन राजा, सुबल राजा और अतिबल राजा जो योगिराज हो गये थे उत्तम, उत्तम तपश्चरण करते हुये सन्यासपूर्वक प्राणों का त्यागकर, तप और संयम धर्म के प्रभाव से सुख की खान आरण नामक स्वर्ग में महान् विभूतिधारी देव हो गये ।

अन्य मुनिराज भी जीवन पर्यंत अदभुत तपश्चरण कर अंत में सन्यास धारण कर धर्मध्यान से प्राण त्याग कर अपने अपने पुण्य से योग्य स्वर्गों में दिव्य स्वर्गीय विभूति के धारी महर्द्धिक देव हो गये । कितनी ही आर्यिकाएँ भी रत्नत्रय के प्रभाव से स्त्रीलिंग छेदकर यथायोग्य सुख से भरे सौधर्म स्वर्ग से अच्युत तक के विभिन्न स्वर्गों में जाकर देव हो गई । अब वे पद्मनाभादिक देव अन्तर्मुहूर्तकाल में ही संपूर्ण यौवन को प्राप्त हो स्वभाव से ही उत्पन्न दिव्य श्रेष्ठ वस्त्राभरणों से मंडित शिला के संपुट के बीच दिव्य कोमल शय्या पर बैठते हुए आश्चर्य से भरे चित्त से उस देवलोक संबंधी संपदाओं को देख क्षणमात्र में ही अवधिज्ञान से युक्त हो गये । उस अवधिज्ञान से इस

समस्त देव संपदा को तप का फल जानकर और पूर्व जन्म के सारे वृतांत को जान जैन धर्म के प्रति और भी दृढ़ बुद्धि के धारी हो गये । इसके बाद वे पद्मनाभादिक देव अपने परिवार सहित श्रेष्ठ धर्म की साधना के लिए स्फटिकमणिमयी जिनालय के दर्शनार्थ गये ।

वहाँ जाकर करोड़ों सूर्यों के तेज से भी अधिक तेज वाले सिद्ध प्रतिमाओं के श्री तीर्थंकर भगवान् के बिम्बों के दर्शनकर,उन्होंने नमस्कार और स्तुति करते हुये महान पूजा की । बड़े भारी देवोपुनीत ठाटबाट से भक्ति पूर्वक दिव्य और उत्कृष्ट अष्टविध सामग्री द्वारा पूजा अर्चा करते हुए गीत नृत्य वादित्रादि द्वारा चैत्यवृक्षों में स्थित जिनमूर्तियों की पूजा की और पीछे नंदीश्वरादि मेरूओं में जाकर वहाँ जिन पूजा का महान् आनन्द प्राप्त किया । वहाँ से विदेह क्षेत्रों में जाकर श्री जिनेन्द्र देव, गणधरदेव, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधुओं के चरण कमलों की भक्ति पूर्वक पूजा करके सिर से प्रणाम कर उनसे परम धर्मामृत का पान कर वे देव अपने - अपने स्थान पर चले गये । वहाँ जाकर धर्म, संयम और तप से प्राप्त दिव्य स्त्री विमानादि संपदाओं में लीन हुये । धर्म में लीन ये देव स्वर्गों में श्री जिनेन्द्रदेव के पंचकल्याणकों की पूजा करते रहते हैं तथा बाकी केवलियों की भक्ति पूर्वक ज्ञानकल्याणक की पूजा करते हैं।

गणधरों, मुनिराजों आदि की पूजा जो कि शुभ पुण्य बंध की माता के समान है, करते रहते हैं। इस प्रकार अन्य अन्य श्रेष्ठ आचरणों से वे देव सदैव शुभ पुण्य बंध करते हुये सहस्रों देवांगनाओं के साथ नाना प्रकार के भोग भोगते हैं। स्वर्गों में दिन रात्रि का भेद नहीं होता वहाँ ऋतुएँ दुःख दायक नहीं होतीं, वहाँ सदैव सुख देने वाला समान काल ही रहता है। वहाँ न कोई दीन गरीब है, न निर्धन है, न रोगी है, न कुरूप है, न दुःस्वर है, न दुःखी है, न पागल है, न विकलांग ही है। ऐसे लोग स्वप्न में भी वहाँ नहीं दिखते हैं। स्वर्गों में सभी देव दिव्य लक्ष्मी, कांति, धैर्य आदि से विभूषित सम्पूर्ण दुःखों से रहित और सुखरूपी समुद्र के मध्य में मग्न होते हैं। पद्म नाभादि

सम्पूर्ण देव समस्त दुःखों से दूर, बिना टिमकार के नेत्र वाले, चतुर, जिनेन्द्र भक्ति में तत्पर, सप्त धातु मल पसेव आदि से रहित और दिव्य शरीर के धारक थे । इनका तीन हाथ ऊँचा शरीर था और बाइस सागर प्रमाण आयु थी। ये बाइस हजार वर्ष में केवल मानसिक आहार ग्रहण करते थे और ग्यारह मास में एक बार श्वॉस लेते थे ।

छठे नरक पर्यन्त शुभाशुभरूपी द्रव्य को अवधिज्ञान के योग से जान लेते हैं । छठे नरक तक की पृथ्वी पर्यन्त क्षेत्र में विक्रिया ऋद्धि बल से ये गमनागमन कर सकते हैं, किन्तु करते नहीं देवागंनाओं के दिव्यरूप श्रृंगार और नाना प्रकार के नृत्यों को देखते हुये अप्सराओं के मुख से नाना प्रकार के मनोहर गीतों को सुनते हुये महल, उद्यान, पर्वत, मेरू, आदि असंख्य द्वीप समुद्रों में देवांगनाओं के साथ क्रीड़ा करते हुये अपनी इच्छानुसार नाना प्रकार के भोगों को भोगते हुये बीते हुये काल को नहीं जानते हैं अर्थात् समय जाता हुआ उनको दिखता नहीं है और वे सुखरूप समुद्र में मग्न रहते हैं। इस प्रकार पुण्य के बल से जो कि तपश्चरण से प्राप्त होता है परम सुख की दाता विभूति को प्राप्त कर भोग भोगते रहते हैं। इसलिये धर्मात्मा सज्जन पुरुषों को चाहिये कि सुख की प्राप्ति के लिये समस्त शक्ति के साथ एक धर्म का ही सेवन करें ।

धर्म ही समस्त विश्व के मनोरथों को सिद्ध करने वाला है। धार्मिक लोग धर्म का ही सहारा लेते हैं। धर्म से ही सत्पुरुषों को शिवपद की प्राप्ति होती है। इसलिये धर्म को नित्य नमस्कार हो । धर्म के अतिरिक्त जगत् में सुखकारी दूसरा पदार्थ नहीं, धर्म का बीज सम्यग्दर्शन ही है, धर्म में मेरा सदैव मनोयोग बना रहे । हे धर्म ! मेरे घातिया कर्मों को नष्ट कर, इस प्रकार धर्म की महिमा पूर्वक उससे निवेदन करते रहना चाहिये ।

(इस प्रकार श्री आचार्य सकलकीर्ति भट्टारक विरचित सुकुमाल चरित्र में नागश्री, नागशर्मादि का तपश्चरण और उससे स्वर्ग गमन आदि का वर्णन करने वाला छठा सर्ग समाप्त हुआ ।)

अथ सप्तम सर्ग

समस्त तीर्थंकर, सिद्ध परमेष्ठी, आचार्य, उपाध्याय और साधु इस प्रकार पंच परमेष्ठियों को उन जैसे गुणों की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ।

अब में सूर्यमित्र और अग्निभूति महामुनि, जो कि रत्नत्रय की शुद्धि प्राप्त कर चुके हैं और उत्कृष्ट आचरण से विभुषित हैं अनेक देशों में विहार करते हुये, लोगों को मोक्षमार्ग में लगाते हुये एक दिन वाराणसी नगरी के बाहर के उद्यान में चले गये। वहाँ उन दोनों महामुनियों ने आत्मध्यान में अपने परम निश्चल चित्त को लगाकर घातियाकर्मों के नष्ट करने वाले योग को धारण किया और क्षपक श्रेणी मांडकर जो कि मोक्षरूपी महल में चढ़ने के लिये सीढ़ियों के समान है, पृथक्त्ववितर्कवीचार नामक शुक्लध्यान से मोहरूपी शत्रु को नष्ट कर दिया।

इसके बाद कर्मों की विजय भूमि को पाकर इन दोनों महामुनियों ने एकत्ववितर्कवीचार नामक शुक्लध्यानरूपी शस्त्र से बाकी के तीन घातिया कर्मों को भी नष्ट कर डाला। चारों घातिया कर्मों के नष्ट हो जाने से तीन लोक के प्रकाश करने में दीपक के समान केवलज्ञान इनके प्रकट हो गया। मुक्ति लक्ष्मी के देने वाले समस्त क्षायिक गुणों के साथ - साथ उपमारहित सारभूत नव केवल - लब्धियाँ इनके प्रगट हो गईं।

केवलज्ञान के प्रगट होते ही इन्द्रादि देवों ने उत्कृष्ट विभूति से आकर बड़ी भारी पूजा की। समस्त धर्मात्माओं और देवों से पूजित वे दोनों केवलज्ञानी अपनी दिव्यध्वनि से मोक्षमार्ग को प्रकाशित करने में पूर्ण समर्थ होते हुये ग्राम देश पर पर्वत आदि प्रदेशों में विहार करते हुये मोक्ष सुख की प्राप्ति के लिये अग्निमन्दर नामक पर्वत पर आये और वहाँ

सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती और व्युपरतक्रियानिर्वृत्ति नामक शुक्लध्यानों के योग से चारों अघातिया कर्मों को भी नष्ट कर शाश्वत सुख वाले मोक्षधाम के साम्राज्य को प्राप्त कर लिया। शाश्वत सुख - मोक्षधाम में अनन्त सुख है, समस्त प्रकार की बाधाओं से जो रहित है, उपमारहित अपनी आत्मा में ही उत्पन्न, वृद्धि और ह्रास से रहित, सारभूत, अक्षय और अतीन्द्रिय है। परम दिव्य सम्यक्त्वादि आठ गुणों वाले सिद्धत्व को वे प्राप्त होकर ज्ञान - देह से युक्त और समस्त प्रकार के देह से रहित होते हुये मुक्तिश्री का सुख भोगने लगे। जब पद्मनाभादि देवों को अवधिज्ञान से ज्ञात हुआ कि इस प्रकार वे महामुनि मोक्षधाम में जा विराजे हैं तो उन्होंने बड़े उत्साह से निर्वाण पूजा की।

जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में विनयवान, श्रेष्ठ धर्मात्माओं से संयुक्त अवंति देश है। जहाँ सदैव केवली भगवान, संघनायक आचार्य और मुनिराज मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति के लिये विहार करते रहते हैं। जहाँ के नगर, ग्राम, देश आदि बड़े - बड़े धर्मात्माओं और जिन चैत्यालयों से सुशोभित हैं। जहाँ के वनों, पर्वतों, नदी तटों, पर्वत, गुफाओं आदि में ध्यानाध्ययन में लीन धीर - वीर मुनिराज देखे जाते हैं। जहाँ जैनगुरुओं के मुख से धर्म श्रवण कर कितने ही वैरागी मनुष्य तपश्चरण करते हैं तो कितने ही धर्मार्थ व्रतों को ग्रहण करते हैं।

जहाँ उत्पन्न होने वाले साधु बनकर कितने ही मोक्ष जाते हैं तो कितने ही कल्पनातीत सुखों के स्थान स्वर्गों में जाते हैं। जहाँ कितने ही जिनेन्द्रदेवाधिदेव की पूजा स्तुति आदि के प्रभाव से सम्यग्दृष्टि जीव स्वर्गों में उत्पन्न होते हैं, और कितने ही सत्पात्र दान देकर उसके पुण्य से भोग भूमि को प्राप्त होते हैं। कितने ही जीव पुण्य योग से कर्मभूमि में उत्पन्न होते हैं जहाँ उत्पन्न होने के लिये देव और इन्द्र भी तरसते हैं, क्योंकि मोक्ष की सिद्धि इसी कर्मभूमि क्षेत्र से होती है, इसलिये इस क्षेत्र का वर्णन कहाँ तक किया जाय? इत्यादि वर्णनों से युक्त देश के मध्य भाग में सुख और संपत्ति से सहित

उज्जयिनी नगरी है जहाँ बड़ी - बड़ी ऊँची अट्टालिकाऐं, कोट, गहरी - गहरी खाईयाँ हैं और जो बड़े - बड़े योद्धाओं के होने से अत्यंत दुर्गम है। जहाँ नाना प्रकार के रंगों से रंगे हुये महलों की पंत्तियाँ हैं और जहाँ बड़े - बड़े धर्म की खान जिनमंदिर सुशोभित हैं जो सोने और रत्नों से बने हुए हैं, बड़ी बड़ी जिनमें ध्वजाएँ हैं, रात दिन स्त्री पुरुष दर्शन पूजार्थ जहाँ आते - जाते रहते हैं, गान वाद्य नृत्य स्तवन आदि से जो सदैव गुंजायमान रहते हैं। जिस नगरी में पुण्यवंत नर नारी सबेरे विस्तरों से उठकर धर्म साधना के लिये सामायिक ध्यानादि करते हैं इसके बाद ही वे गृहकार्य करते हैं क्योंकि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों में जिनेन्द्रदेव द्वारा कहा हुआ धर्म ही समस्त अर्थों की सिद्धि का देने वाला है, जहाँ गृहकार्य से निवृत्त होकर जिनालयों में जाकर गृहस्थ लोग तीर्थंकर भगवान की पूजा करते हैं और पीछे पात्रदान के लिये अपने अपने घरों के दरवाजों पर खड़े होकर द्वारापेक्षण किया करते हैं, सांयकाल दिन में जो भी गृहकार्य द्वारा कोई भी पाप लगता है उसे मिटाने के लिये प्रतिकमण, कायोत्सर्गादि शुभ क्रियाएँ करते रहते हैं। जहाँ पुत्रजन्मोत्सव, विवाह आदि शुभ और मांगलिक कार्यों से श्रावक गृहस्थ लोग मंगल कामना के लिये बड़े ठाठ - बाट से जिनेन्द्रदेव की पूजा किया करते हैं।

इस प्रकार श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा उज्जयिनी नगरी के प्रजाजन व्रताचरण, शील, दान, पूजा, आदि द्वारा निरंतर धर्मसाधना में लीन रहते थे। धर्म साधना के फल से ही श्रीमंत चतुर लोगों के बड़े - बड़े महलों में पैंड पैंड पर संपदाये बिछी रहती हैं। ऐसी विभूतिवाली इस उज्जयिनी नगरी का धर्म में चित्त रखने वाला वृषभांक नामक राजा था। जो श्रेष्ठ धर्माचरणों, जिनेन्द्र पूजा, मुनिसेवा आदि द्वारा कीर्ति, कांति और श्रेष्ठ लक्षणों से सहित धर्म की मूर्ति के समान सुशोभित होता था। इसी नगरी में पुण्यवानपने के समस्त लक्षणों से सुशोभित, श्रावकोचित धर्मकार्य में अग्रगामी, सुरेन्द्रदत्त नाम का महान धनी सेठ रहता था।

वह श्रावकोत्तम सदा शील, व्रत, उपवास,

पात्रदान, जिन पूजा आदि द्वारा पुण्य की मूर्ति के समान लगता था। इस सेठ के महान, रूपवती, सुखकारक, प्रेमपात्र और मनोहर यशोभद्रा नामक स्त्री थी। पुण्य के उदय से इनके घर में सुवर्ण, चांदी, परिवार, कुटुम्ब आदि सभी प्रकार की विभूतियाँ थीं परन्तु केवल कुलदीपक कोई पुत्र नहीं था। यशोभद्रा को इस बात की हृदय में बड़ी भारी वेदना थी कि मेरे घर में सब प्रकार की संपदाओं के होते हुये भी कोई पुत्र नहीं है। एक दिन मति, श्रुत, अवधिज्ञान के धारी श्रेष्ठमति वर्धमान नामक मुनिराज विहार करते करते नगरी के उद्यान में पधारे। ये महामुनि जगत के हितैषी, जगत्पूज्य, देव, मुनि, मानव और सब तिर्यंचों से पूजित थे जो धर्मात्माओं को धर्म की प्रेरणा (पुण्योदय) होने पर ही प्राप्त हो सकते थे।

जब उज्जयिनी नगरी के राजा श्रीवृषभांक को यह विदित हुआ कि नगरी के बाहर उद्यान में मुनिराज का आगमन हुआ है तो उसने सूचना के लिये नगर में ढोंडी पिटवाई और हर्ष पूर्वक सैनिक जनों के साथ मुनिवंदनार्थ प्रस्थान किया। ढोंडी की आवाज सुन यशोभद्रा सेठानी ने अपनी सखी से पूछा कि यह ढोंडी क्यों पिटी है? इसका कारण जानकर बतलाओं - सखी ने उत्तर दिया कि नगरोद्यान में मुनिराज पधारे हैं सो राजा ने जनता के सूचनार्थ भेरी (ढोंडी) बजवाई है और उनकी वंदना के लिये स्वयं ठाठबाट से जा रहा है। यशोभद्रा अपनी सखी की यह बात सुन पूजा की सामग्री तैयार कर, उसे अपने हाथ में ले अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिये मुनिराज के दर्शनार्थ गई।

उद्यान के प्रासुक भाग में मुनीन्द्र को विराजमान देखकर राजा आदि सभी ने वंदना पूजा की और यशोभद्रा भी वंदना पूजा कर अपने योग्य स्थान पर बैठ गई। मुनिराज के मुख से इन्द्र, चक्रवर्ती और तीर्थंकरादि की सपंदा (विभूति) देने वाले स्वर्ग व मोक्ष के दाता गृहस्थधर्म और मुनिधर्म का व्याख्यान "जो कि दया प्रधान और जगत् का कल्याण करने वाला है", सुन, सिर से नमस्कार कर यशोभद्रा सेठानी ने मुनिराज से प्रश्न किया कि-
हे प्रभो !

आप यह बतलाइये कि मेरे पुत्र होगा या नहीं? यह प्रश्न सुन मुनिराज बोले कि महान धीर, दिव्यरूपी, गुणों का समुद्र, महान भोगी, जगत् में मान्य, संपूर्ण कार्यों के करने में समर्थ ऐसा पुत्र तेरे गर्भ से अवश्य जन्म लेगा किन्तु तेरा पति सुरेन्ददत्त संसार के भोगों से अत्यन्त विरक्त होकर तपोवन जाने के लिये चाहता हुआ भी लक्ष्मी आदि के मोह के कारण पुत्र के अभाव से तब तक ही घर में रहेगा जब तक कि वह अपने पुत्र का मुख न देख लेगा। पुत्र का मुख देखते ही वह श्रेष्ठ गुणों का भण्डार सेठ तुझको तथा संपूर्ण लक्ष्मी को छोड़कर तपोवन जाकर संयम ग्रहण कर लेगा और तेरा वह भावी पुत्र भी इतना धर्मात्मा होगा कि जब तक ही घर में रहेगा तब तक वह मुनिराज के वचनों को अपने कान से नहीं सुन लेगा। मुनिराज के केवल दर्शन तथा वचन के सुनने से ही धीर वीर पुरुषों के योग्य दुर्धर तप को अंगीकार कर लेगा। इस प्रकार मुनिराज से अपने प्रश्न का उत्तर सुनकर यशोभद्रा सेठानी इष्ट और अनिष्ट समाचार से हर्ष और विषाद दोनों से युक्त हो गई और शुभ पुण्योदय से थोड़े दिनों बाद उसे गर्भ रह गया किन्तु सेठानी यशोभद्रा चाहती थी कि गर्भाधान और पुत्रोत्पत्ति की बात को घर में कोई भी न जान सके। उसे डर था कि मेरे पति पुत्र का मुख देखते ही तप ग्रहण कर लेंगे इसलिये इन से भी छिपाना चाहिये। वह सेठानी घर के एक कोने में बैठी रहती और किसी को अपने गर्भ की बात मालूम न होने देती। नौ महीने पूरे हो जाने पर उसने अपने दिव्य भूमिग्रह (जमीन के अन्दर के घर) में जाकर दैदीप्यमान भाग्यशाली पुत्र को जन्म दिया। जब अपवित्रता से भरे प्रसूतिवस्त्रों को सेठानी की नौकरानी घर के बाहर धोने ले गई और वह उन वस्त्रों को जलाशय पर धो रही थी तभी किसी ब्राह्मण ने देखकर हृदय में विचार किया कि सेठ पुत्रहीन था सो आज उसके पुत्र हुआ है। इसी कारण यह नौकरानी इन कपड़ों को धोने लाई है - उसने अपने सिर की चोटी एवं पगड़ी हाथ से बाँध कर सेठ जी के पास जाकर कहा कि सेठ जी ! आपके महान् पुण्योदय से आप के निश्चय से पुत्र ही हुआ है।

सेठ ने ब्राह्मण से यह शुभ समाचार सुन हृदय में अत्यन्त प्रसन्न हो, सेठानी के पास जा पुत्र के मुख का अवलोकन किया और उस ब्राह्मण को जन्मोत्सव की बधाई में इनाम के रूप में बहुत सी संपदा दी और सारी लक्ष्मी को सड़े तृण के समान समझकर छोड़ता हुआ वह सेठ तपश्चरण के लिये उसी समय वन में चला गया। वहाँ श्री गुरुचरणों के कमलों को नमस्कार कर, मन वचन काय की शुद्धि से अंतरंग बहिरंग परिग्रह छोड़ मुक्ति के लिये हर्ष पूर्वक गुरु से दीक्षा मांगी और गुरुराज (मुनिराज) ने दीक्षा दे दी।

इसके बाद उस श्रेष्ठबुद्धि ने संयमपूर्वक अपना पराक्रम प्रगट करके मोक्ष कल्याण के देने वाले तपश्चरण का करना प्रारम्भ किया। यशोभद्रा ने पुत्र जन्मोत्सव की खुशी में जिनालय में जिनेन्द्रदेव की महोत्सव और ठाटबाट से अभिषेक पूर्वक अष्ट द्रव्य से पूजा की, अपने कुटुम्बी जनों को तृप्त किया, नाना प्रकार के दान बांटे। बाजे, नृत्य, गान आदि द्वारा बंधुजनों का सत्कार करते हुये पुत्र जन्मोत्सव बड़े आनन्द के साथ मनाया। पुत्र जन्मोत्सव के दूसरे दिन यशोभद्रा ने अपने पुत्र का नाम अत्यंत कोमल अंग होने से समस्त बंधुजनों के समक्ष सुकुमार (सुकुमाल) रखा।

नामकरण संस्कार के बाद जिनालयों में महोत्सवपूर्वक बड़े उत्साह और धर्मोल्लास से देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान की अभिषेक पूर्वक अष्ट द्रव्य से पूजा की। वह सुकुमाल बालक द्वितीया के चन्द्रमा के समान अत्यन्त सुंदर, नेत्रों को आनन्द देने वाला, दैदीप्यमान कांति समूह के साथ गुणों और शरीर के अवयवों से बढ़ने लगा। वह सुकुमाल बालक अपने शरीर के योग्य मधुर दुग्धपानादि क्रियाओं से, आभूषणों और वस्त्रों से लोक प्रिय लगता हुआ बड़ा होने लगा। स्वभाव से ही सुंदर रूप का धारक, अत्यन्त मनोहरांग अपनी मंदहास्य (मुस्कान) पूर्ण चेष्टाओं से माता आदि कुटुम्बीजनों को आनंदित करता था। वह सुकुमाल बालक दिव्यलक्षणों और आभूषणादि तथा शरीर की कांति आदि से कुमार अवस्था में देवकुमार के समान सुशोभित

होता था । सुकुमाल की माता सदैव चित्त में इस बात की चिंता रखती थी कि ऐसा प्रबंध करूँ कि यह कभी मुनिराज का दर्शन न कर ले, उसे मुनिराजों के इस वाक्य में विश्वास था कि यह मुनि दर्शन प्राप्त करते ही तप स्वीकार कर लेगा । इसलिये मुनिदर्शन से बचाने के लिये उसकी माता यशोभद्रा ने नाना प्रकार के रत्नों से जुड़ा हुआ स्वर्णमयी ऊँचा एक सर्वतोभद्र महल तैयार कराया । उसके चारों ओर बहुमूल्यवान चाँदी के बत्तीस छोटे महल और बनवाये ।

उस महल के चारों तरफ मुनिराजों के आने की मनाई (निषेध) करा दी । सो ठीक ही है कि जिनके चित्त महामोह से अंध हो रहे हैं उनको कुछ विचार नहीं रहता और जिनको कार्य अकार्य का विचार नहीं रहता उनको धर्म की प्राप्ति कैसे हो सकती है? वह सुकुमाल अपनी इच्छा से क्रीड़ा तथा आमोद - प्रमोद - करता हुआ रात दिन के भेद को नहीं जानता था, न मनुष्य आदि के जाति भेद को जानता था, न उसे सर्दी, गर्मी आदि की बाधा ही मालूम पड़ती थी - वह संपूर्ण दुःखों से रहित और सुख में मग्न स्वर्ग में इन्द्र की तरह रहने लगा । वह सुकुमाल अब युवा हो गया - यौवन के समस्त प्रकार के लक्षणों से सुशोभित, कांति, तेज, कला, कलाप, महान रूप लावण्य और सुंदरता आदि से मनोहर देव की तरह वह सुन्दर दिखने लगा । यशोभद्रा ने सुकुमाल को विवाह योग्य जानकर चतुरिका, चित्रा, रेवती, पद्मिनी, मणिमाला, सुशीला, रोहिणी सुलोचना, सुदामा आदि 32 सेठ कन्याओं के पिता सेठों को पुत्र के विवाहार्थ बुलाया । यशोभद्रा ने अपने घर पर ही उन कन्याओं से विवाह करने का निश्चयकर विवाह मंडप तैयार कराया और बड़े भारी वैभव तथा ठाठ बाट के साथ उस सर्वतोभद्र महल पर ही भाव - विधि के साथ विवाह किया । विवाह मंडप के बाहर भी गीत नृत्य वादित्र आदि से बड़ा उत्सव हो रहा था जो विवाह कार्य में बंधुजन उपस्थित हुये थे । वे सभी आनंद से मग्न और भाव विभोर थे । सुकुमाल की माता श्री यशोभद्रा ने सुकुमाल के विवाह के बाद बत्तीस पुत्र

वधुओं को एक एक महल सुखपूर्वक रहने के लिये दे दिये । ये बत्तीस महल वे ही हैं जो पहिले इसने रूपमयी चाँदी के बनवाये थे । वह सुकुमाल उन रूप लावण्य की खान, पुण्यवान स्त्रियों के साथ निरंतर विषय भोग भोगता हुआ सर्वथा चिंतारहित हो इन्द्र के समान सुख के समुद्र में मग्न होकर बीते हुये काल को भी नहीं जानता था ।

एक दिन एक परदेशी रत्नों से जड़ा हुआ एक शॉल (रत्नकंबल) बेचने के लिये लाया और उसे उस नगरी के राजा वृषभांक को दिखलाया । यह शॉल बहुत मूल्य का था । व्यापारी ने जो उसका मूल्य माँगा उसे देने में राजा असमर्थ था इसलिये वापस ही दे दिया । जब उस व्यापारी सेठ ने वह रत्नकंबल उस महान धनाढ्य सेठानी यशोभद्रा को खरीदने के लिये दिखलाया । यशोभद्रा सेठानी को वह रत्नकंबल पंसद आ गया, उस व्यापारी सेठ ने जितना भी उसका मूल्य माँगा बदले में उतना मूल्य देकर वह रत्नकंबल ले लिया और अपने पुत्र सुकुमाल के उपयोग के योग्य जानकर उसे दे दिया । श्री सुकुमाल ने उसे देखकर तथा हाथ लगाकर जब ये जाना कि यह तो महान कठिन (कड़ा) होने से मेरे उपयोग के लायक नहीं है, छोड़ दिया, तब यशोभद्रा ने उसके टुकड़े - टुकड़े कराकर उन टुकड़ों से अपनी बत्तीस पुत्र - वधुओं के पाँवों में जो जूतियाँ थी उनमें उन रत्नों को जड़वा दिया ।

अर्थात् उस रत्नकंबल की जूतियाँ बनवा दीं । इन बत्तीस स्त्रियों में जो सुदामा नामक स्त्री थी वह उन रत्नजड़ित जूतियों को पहनकर अपने महल के ऊपर चली गई - वहाँ थोड़ी देर तक तो बैठी रही और जब आने लगी तो पश्चिम द्वारमंडप में उन खुली हुई जूतियों को भूल आई और अपने महल में आ गई । महल की छत पर पड़ी हुई जूती को मांस समझकर एक गिद्द उठा ले गया और राजा वृषभांक के बहुत ऊँचे महल पर ले जाकर उसमें खाने के लिये चौंच मारी । वह कठोर रत्न था - कैसे खाया जाता? गिद्द ने खाने का बड़ा यत्न किया परन्तु जब वह न खा सका तो उसे क्रोध आया और उसने उसे वहीं डाल दिया । समय पाकर राजा ने उस

रत्नकंबल से अंकित जूती को जब वहाँ पड़े हुये देखा तो आश्चर्य में मग्न होकर पूछा कि यह सुंदर जूती किसकी है? इस प्रकार पूछने पर राजा को उत्तर मिला कि महान लक्ष्मी और सौख्य के धारक सुकुमाल की स्त्री की यह जूती है। राजा को यह बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ और उसे सुकुमाल को देखने की बड़ी इच्छा हुई और वह उससे मिलने के लिये उसी समय चल पड़ा।

जब यशोभद्रा (सुकुमाल की माता) को यह विदित हुआ कि स्वयं राजा वृषभांक यहाँ आ रहा है तो उसने बड़े भारी ठाठ बाट से राजा को स्वागत समारोह के साथ अपने घर में प्रवेश कराया। स्वर्णमयी सिंहासन लगाकर उस पर बिठलाया और राजा को नजर भेंट कर पूछा कि - आज आपने यहाँ पधार कर मेरा घर पवित्र कर दिया है - कृपा करके मुझे यह बतलाइये कि यहाँ आपके पधारने का क्या कारण है? तब राजा वृषभांक ने कहा कि मैं तुम्हारे पुत्र से मिलने के लिये यहाँ आया हूँ और कोई कारण नहीं है। यशोभद्रा ने राजा के मान सम्मान सत्कार की व्यवस्था करके अपने पुत्र सुकुमाल को बुलाया और राजा से मुलाकात कराई।

राजा ने उस दिव्य रूपधारी सुकुमाल के रूप के अतिशय को देखकर प्रभावित हो अपने आसन के आधे भाग पर उसे बिठलाया और बड़ा प्रसन्न हुआ। यशोभद्रा ने इसके बाद राजा से प्रार्थना की कि महाराज ! आज मेरे इस घर पर ही आपको भोजन ग्रहण करना पड़ेगा - मेरी प्रार्थना को आपको स्वीकार करना होगा। राजा ने वहीं भोजन करना स्वीकार कर लिया। राजा ने सुकुमाल श्रेष्ठिपुत्र के साथ सुवर्ण पात्रों में भोजन किया। भोजन के बाद राजा ने सेठानी यशोभद्रा से कहा कि तुम्हारे पुत्र सुकुमाल को तीन रोग हैं - जिनका तुमको इलाज कराना चाहिये।

तुमने इन रोगों की उपेक्षा किस प्रकार कर रक्खी है? राजा की यह बात सुनकर यशोभद्रा ने कहा कि महाराज ! वे तीन व्याधियाँ कौन सी हैं? बतलाने की कृपा करें। तब राजा ने फिर कहा कि इसके तीन व्याधियाँ ये हैं कि एक तो इसका आसन स्थिर नहीं, किन्तु चलायमान रहता

है, दूसरे इसकी आँखों में से पानी आता है और तीसरे यह एक - एक चावल उठाकर खाता है। राजा के द्वारा बतलाई हुई इन तीन व्याधियों की बात सुनकर यशोभद्रा ने कहा कि महाराज ! ये तीनों ही जो आप व्याधि बतलाते हैं, व्याधियाँ नहीं हैं। सुकुमाल की माता यशोभद्रा ने राजा को बतलाया कि महाराज ! यह मेरा सुकुमाल सदैव अत्यन्त कोमल दिव्य शय्या पर ही सोता है और वैसी ही गद्दी पर बैठता है, किन्तु आज हमने मंगलस्वरूप आप के ऊपर जो सरसों डाली है उन सरसों में से कुछ आसन पर भी गिर गई हैं जो इस मेरे अतिकोमलांग पुत्र सुकुमाल के चुभ रही हैं उस कठोरता से इसका आसन चलायमान हो रहा है। अतएव यह रोग नहीं है।

आँखों से पानी आने का कारण यह है कि यह सुकुमाल सदैव रत्नों के दीपक के प्रकाश में ही रहता है इसने रत्नों की प्रभा के अतिरिक्त दूसरी कोई प्रभा देखी ही नहीं। आज आप जो यहाँ पधारे हैं सो आपकी मंगलस्वरूप आरती उतारी गई है जिसमें घृत जलाया गया है सो इस प्रभा के कारण इसके नेत्रों में पानी आ गया है क्योंकि इसके नेत्र ऐसी तेज प्रभा सहन नहीं कर सकते। चावल का एक - एक दाना खाने का कारण यह है कि जो यह चावल खाया करता है उनको सूर्यास्त समय सरोवर में गीली कमल की कली में रख दिये जाते हैं जब चावल अत्यन्त सुगंधित और कोमल हो जाते हैं तब प्रातः काल उनको धोकर बनाये जाते हैं परन्तु, आज आप के पधारने से कुछ अधिक चावलों की आवश्यकता थी इसलिये उन चावलों में कुछ साधारण चावल भी मिला दिये थे सो इन सबको खाने में इसकी अरुचि थी इसीलिये अरुचिपूर्वक एक - एक चावल उठाकर खाता था। इस प्रकार हे राजन् !

आपने जिनको बीमारी समझा है वे बीमारी नहीं हैं। राजा को यशोभद्रा के द्वारा कही हुई बातें सुनकर बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। राजा को सेठानी ने रत्नाभूषण वस्त्राभूषण अनेक भेंट देकर विदा करते हुये स्तुति की। राजा ने भी उस सुकुमाल का नाम अवंति सुकुमार (सारी पृथ्वी पर कोमल - नाजुक) रख दिया और आनन्द पूर्वक अपने महलों में चला गया। अब इस

अवंतिसुकुमार की तीन लोक (पूरे देश) में कीर्ति फैल गई और यह अपने पुण्योदय से नाना प्रकार के भोग भोगता रहा । इस प्रकार वह सुकुमाल श्रेष्ठिपुत्र पुण्योदय से महान दुःख से रहित, अनुपम, दिव्य भोगों – उपभोगों को भोगता हुआ अपार लक्ष्मी का पात्र होकर – राजाओं से भी सम्मानित हुआ । इसलिये अत्यंत निपुण सुखाभिलाषी मनुष्यों को उचित है कि मन, वचन, काय की विशुद्धि से जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहे हुए धर्म की शक्ति को न छिपाकर साधना करें । धर्म के प्रभाव से ही तीन जगत् में उत्पन्न होने वाली इन्द्र तीर्थंकरादि की विभूतियाँ प्राप्त होती हैं और जो जिनेन्द्र प्रणीत धर्म का सेवन करते हैं वे क्रम से अनंतसुखों की खान मोक्ष सुख को भी प्राप्त कर लेते हैं। (इस प्रकार श्री आचार्य सकलकीर्ति भट्टारक विरचित सुकुमाल चरित्र में सुकुमाल की उत्पत्ति तथा उसके सुखों का वर्णन करने वाला सातवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।)

अथ अष्टम सर्ग

तीन जगत् के पूज्य, जगत् के गुरु और तीन जगत् के स्वामियों से सेवित हैं चरण जिनके उन पंच परमेष्ठियों (भगवन्तों) को मैं नमस्कार करता हूँ।

एक दिन श्री सुकुमाल के मामा, धर्मबुद्धि, जगत् हितैषी यशोभद्र महामुनिराज ने अवधिज्ञान से यह जान लिया कि अब सुकुमाल की आयु बहुत थोड़ी रह गई है। पूर्व जन्म से चले आये संबंध से महामुनिराज ने श्री सुकुमाल के हित के लिये विचार किया कि अहो ! धर्म की साधना के बिना इसकी इतनी दुर्लभ आयु यों ही चली गई अब इसकी आयु जो कि तप और धर्म के लिए कारण है बहुत थोड़ी रह गई है परन्तु इसके घर पर तो माता के मोह के कारण कोई संयमी साधु जा नहीं सकता इसलिये और ही किसी श्रेष्ठ उपाय से मैं इसे संयम को ग्रहण कराऊँगा ।

यह विचार कर श्री यशोभद्र महाराज ने उसे संबोधन के लिए चातुर्मास योग ग्रहण करने के श्रेष्ठ दिन जो उस सुकुमाल के महल के निकट उद्यान में दैदीप्यमान और ऊँचा जिन मंदिर था वहाँ पदार्पण किया । जब मुनिराज श्री जिनमंदिर में आ विराजे तो उस उद्यान के पालक वनपाल ने सुकुमाल की माता यशोभद्रा से जाकर निवेदन किया कि जिनालय

में महामुनि पधारे हैं। वनपाल के द्वारा यह सूचना सुनकर यशोभद्रा जिनालय पहुँची और भगवान तथा अपने भ्राता यशोभद्र मुनिराज को नमस्कार कर बोली कि स्वामिन् ! मेरे प्राणों से भी प्यारा यह एक ही पुत्र है यदि आपके यह शब्द भी सुन लेगा तो यह जिन दीक्षा लेकर तपस्वी बन जाएगा जो मेरे बड़ा भारी आर्त्तध्यान का कारण होगा, जिससे कि मेरी मृत्यु भी हो सकती है इसलिए आप दया करके यहाँ से और किसी जगह शीघ्र ही पधार जाइये और यहाँ न ठहरिये । श्री यशोभद्र मुनिराज ने उत्तर दिया

कि आज हमारा चातुर्मासयोग का यह दिन है सो जीव दया पालन करने वाले हम लोगों के लिए अब कहीं भी जाना उचित नहीं । यदि चातुर्मासिक योग का दिन न होता तो चला जाता परन्तु अब तो यहीं पर ठहरना होगा । इस प्रकार वे संपूर्ण बहिरंग एवं अंतरंग ममत्व के त्यागी महा मुनिराज ठूंठ के समान निश्चल हो प्रतिमा योग धारण कर ध्यानस्थ हो गये और वहीं उन धीर वीर निपुण मुनिराज ने कार्योत्सर्ग और आत्मतत्व के ध्यान से चार महीने पूर्ण कर कार्तिक शुक्ल पूर्णमासी के दिन रात्रि के चौथे पहर में उस चातुर्मासयोग की क्रिया को छोड़ा ।

श्री यशोभद्र महाराज ने जब अपने अवधि ज्ञान से यह जान लिया कि सुकुमाल की आँख खुल गई है तो उसे बुलाने के लिये तीन लोक की प्रज्ञप्ति का अपनी वाणी से वर्णन करना प्रारंभ किया, पहले तो वैराग्य भावों के उपजाने के लिये अधोलोक (नरकलोक) के दुःखों का वर्णन किया और पीछे मध्यलोक का वर्णन करके अच्युत स्वर्ग के पद्मगुल्म विमान में पद्मनाभ देव की बड़ी भारी विभूति और संपदा को अपनी वाणी से वर्णन किया जिसके सुनने मात्र से सुकुमाल को जाति स्मरण हो गया । सुकुमाल को अपने सारे पुराने भवों की घटना का ज्ञान हो गया और उसने इन्द्रिय सुखों और संसार से वैराग्यभाव धारण कर विरक्त चित्त हो विचार किया कि – अहो ! यह मेरी आत्मा उपमारहित स्वर्गजनित बड़े भारी सुखों को चिरकाल तक भोगने से ही जब तृप्त न हुई तो दुःखों से मिले हुये, पराधीन, शारीरिक परिश्रम से

उत्पन्न, निंदनीय, अन्त में बुरे परिणाम वाले मनुष्य पर्याय के सुखों से कैसे तृप्त होगी? चाहे ईंधन से किसी देव संयोग से अग्नि तृप्त हो जाये, समुद्र बहुत नदियों के प्रवाह के अपने में गिरने से तृप्त हो जाये, धन संग्रह से लोभी भी तृप्त हो जाये परन्तु यह आत्मा अनंत जन्मों तक तीन लोक के सुन्दर सुन्दर विषयों को भोगता रहे तो भी तृप्त नहीं हो सकता । जो भोगजनित सुखों से अपने इंद्रिय सुखों की तृप्ति चाहते हैं वे अपथ्य सेवन करके भी रोग का नाश चाहते हैं अथवा अग्नि में तेल डालते रहकर भी आग बुझाना चाहते हैं। विषयों की पीड़ा की शान्ति के लिये जिस शरीर के द्वारा ये भोग भोगे जाते हैं वह शरीर तो अत्यन्त निःसार, चलायमान और मल मूत्र विष्ठा आदि से भरा हुआ है। मैंने इतने समय तक इस शरीर को वृथा ही पाला पोषा है, वास्तव में मैं महान मूर्ख हूँ जिसने तपश्चरण के बिना भोगोपभोगों में इतना बड़ा समय खो दिया । यह शरीर भीतर से महान वीभत्स, घिनावना और गंदा मैला है इसमें मलमूत्र रुधिर आदि मलिन चीजें ही तो भरी हुई हैं किन्तु, ऊपर से वस्त्राभूषणादि से यह लिपटा होने से सुन्दर दिखता है। सुकुमाल विचारता है कि आज तक तो मैं सोता ही रहा था, अब जगा हूँ सो जगत् में निंदनीय इस शरीर को तपरूपी अग्नि से सुखाकर इसके द्वारा मोक्ष लक्ष्मी की साधना करूँगा । पुरुषों को डसने के लिये सर्पिणी के समान काली, पापों की खानें, अपवित्र, चंचल, निंदनीय, नरक में पहुँचाने के लिये पाँवों में बेड़ी के समान ये सब स्त्रियाँ हैं। जेलखाने के समान खोटा, विद्वानों द्वारा निंदनीय, अनंत दुःखों और पापों की खान, धर्म को नष्ट करने वाला यह गृहस्थाश्रम है। ये जो भी सुख संपदाएँ दिखती हैं सो अत्यंत चलायमान, मोह की माताओं के समान संपूर्ण अनर्थों की करने वाली, दुःख की मूल और विपदा स्वरूप हैं। यह सारा कुटुम्ब पाप की प्रेरणा करने वाला, निंदनीय, विषम गली, सांकल के समान और धर्म का नाशक है, यह यौवन बुढ़ापे की दाढ़ में है और यह आयु यमराज के मुख में है और यह संसार सब दुःखों के भार से दवा हुआ है। यह संसार क्षण भंगुर है। ये स्पर्शन रसनादि पाँचों इन्द्रियाँ धर्म रूपी रत्न को चुराने वाले

चोरों के समान हैं। समस्त अनर्थों के करने वाले असाध्य शत्रुओं के समान ये क्रोधादि कषाय हैं। मैं इतने दिन तक इस घर रूपी जेलखाने में स्त्रियोंरूपी बेड़ियों से बँधा हुआ और संपदा रूपी फाँसी से लिपटा हुआ वृथा ही पड़ा रहा मैं आज इस योगिराज के उत्तम वचनों के सुनने से जागृत हुआ हूँ सो इस मोहरूपी फाँसी को काटकर शीघ्र ही संयम को धारण करूँगा।

जब तक यह मेरी आयु क्षीण न हो जाये, जब तक बुढ़ापा न आ जाये, जब तक ये इन्द्रियाँ काम देती रहें तब तक ही मैं अपना हित जो तपश्चरण है उसे कर सकता हूँ, पीछे तो क्या है? जब तक यह मेरी बुद्धि काम दे रही है और जब तक शरीर में दृढ़ता और यौवन है तब तक ही स्वर्ग और मोक्ष की साधना करने वाला तप हो सकता है, पीछे तो क्या है? सो मैं आज प्रातः काल ही अपने स्वर्ग मोक्ष का साधन रूप उपाय कर लूँगा। जो नरभव पाकर भी अपना यह महानकार्य सिद्ध नहीं करते उनका यमरूपी शत्रु ने गला पकड़ रक्खा है और वे दुर्भाग्य से क्षणमात्र में ही दुर्गति रूपी समुद्र में गिर जाते हैं।

इस प्रकार के विचार से सुकुमाल के हृदय में संसार के सुख, काम, भोगादि तथा घर स्त्री आदि सबसे और भी दूना वैराग्य हो गया। सुकुमाल ने विचार किया कि इस महल से निकलने का मुझे इस समय कोई उपाय नहीं दिख रहा है। क्योंकि यह महल पर्याप्त ऊँचा है और इसके द्वार के बड़े मजबूत किवाड़ बंद हैं। परन्तु, वह वैराग्य के लिये तत्पर, तपश्चरण में तैयार था, सो उसने वहाँ से उतरने के उपाय की खोज में लगकर एक कपड़े की गाँठ देखी। सुकुमाल ने उसे कपड़े की गाँठ से कपड़े निकाल कर उनको आपस में गाँठ देकर लंबा रस्सा सरीखा बना खंभों से बाँधकर लटका दिया और शुभ भावों के उदय से उस पकड़कर, नीचे जमीन पर उतरकर वह मुनिराज यशोभद्र महाराज के पास जा पहुँचा। मुनिराज को तीन प्रदक्षिणा दे, मस्तक से नमस्कार कर अपने हृदय पर जोड़े हुये दोनों हाथ धर संयम प्रदान करने की प्रार्थना की और कहा कि

भगवन्!
विषयों में आसक्ति के कारण संयम और तपश्चरण के बिना मेरे इतने दिन वृथा ही चले गये। आज आपके प्रसाद से आपका वचन रूपी अमृत मुझे पीने को मिल गया सो मेरा मोहरूपी विष उतर गया और मैं जाग गया। अब आप कृपा करके मुक्ति की माता स्वरूप जिन दीक्षा मुझे देने की कृपा कीजिए क्योंकि इसी से कल्याण का लाभ होगा और यही कल्याण की खान भी है।

सुकुमाल की यह प्रार्थना सुन यशोभद्र महाराज बोले कि भद्र! तुमने यह बहुत ही सुंदर विचार किया है क्योंकि अब तुम्हारी आयु केवल तीन दिन की ही शेष रह गई है। श्री सुकुमाल ने मुनिराज के मुख से यह बात सुनी उसी समय समस्त अंतरंग बहिरंग परिग्रह का त्याग कर जिनमुद्रा ग्रहण कर ली। खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय इस प्रकार चारों प्रकार के आहार का भी त्याग कर सन्यास ग्रहण कर लिया। प्रातः काल ही सन्यास धारण किये हुये श्रेष्ठ ध्यान की आराधना के लिये वह दूसरे वन में चले गये। मनोज्ञ किन्तु अत्यंत भयानक निर्जन प्रदेशों में देह से सब प्रकार का ममत्व छोड़ एक पाँव (खड़गासन) से अपने निश्चल शरीर को पृथ्वी पर खड़ा कर प्रायोपगमन सन्यास धारण कर लिया।

(सन्यास तीन प्रकार का होता है - भक्तप्रत्याख्यान, इंगिनी और प्रायोपगमन। इन तीनों में ही चारों प्रकार के आहार का त्याग तो होता ही है परन्तु भक्तप्रत्याख्यान सन्यास में देह का स्वयं तथा दूसरे से भी बाहरी उपचार कराया जा सकता है। इंगिनी मरण में अपने शरीर की सेवा स्वयं तो की जा सकती है लेकिन दूसरे द्वारा नहीं। किन्तु प्रायोपगमन सन्यास में स्वकृत परकृत दोनों ही उपचार नहीं किये जाते।) ऐसा कठोर प्रायोपगमन सन्यास श्री सुकुमाल मुनिराज ने धारण किया। यशोभद्र मुनिराज भी चातुर्मासयोग की समाप्ति हो जाने पर संक्लेश निवारणार्थ उस जिनागार से दूसरे जिनागार में चले गये।

सुकुमाल तो किसी को कुछ न कहकर मुनि हो गये

और वन में जाकर सन्यास भी उन्होंने ग्रहण कर लिया । इधर महलों में जब इनकी 32 स्त्रियों ने अपने पति सुकुमाल जी को नहीं देख - इधर उधर खोज भी की। जब वे नहीं मिले तो उन्होंने शोक और दुःख से व्याकुलित होकर अपनी सास अर्थात् सुकुमाल की माता यशोभद्रा से कहा कि - माता जी ! आपका पुत्र और हमारे प्राणाधार दिखते नहीं - महल से कहाँ चले गये सो मालूम नहीं होता। यशोभद्रा ने ये समाचार सुन मूर्च्छित हो महान शोक के भार से मुर्दे की तरह हो, हा हा करते हुए रुदन प्रारंभ कर दिया ।

सारे स्वजन बंधुजन भी रोने लगे और वे 32 स्त्रियाँ भी रोने लगीं। जब उनका शीतोपचार किया । यशोभद्रा इधर उधर ढूँढती हुई शोक से व्याकुलित हो रही थी कि उसे खंभों से लटकती हुई एक वस्त्रमाला दिखलायी पड़ी । उसने रस्सी के रूप में उस वस्त्रमाला को देख लिया कि इसको पकड़ कर मेरा पुत्र नीचे उतरा है और निश्चय किया कि मेरे पुत्र सुकुमाल को वह मुनि ही, जो कि जिन चैत्यालय में ठहरा है, ले गया है सो वह जिन चैत्यालय को गई ।

जब उस जिनालय में उन मुनिराज श्री यशोभद्र को भी नहीं देखा तो बंधुजनों के साथ शोकाकुलित हो समस्त स्थानों पर ढूंढना प्रारम्भ किया। जब इस बात की सूचना राजा को मिली तो राजा ने भी अपने समस्त लोगों को आज्ञा दी कि सुकुमाल को खोजने के कार्य में सभी लोग जुट जावें । सभी लोगों ने बड़े भारी प्रयत्न और लगन से सुकुमाल को ढूँढ़ा परन्तु वह न मिला क्योंकि वह तो ऐसे गुप्त स्थान में था जिसका पता बड़ी भारी कठिनता से ही चले? जिस समय सुकुमाल जी अपने महल से निकल कर गये उसी दिन से नगर में, मनुष्यों ने तो क्या पशुओं तक ने खाना पीना छोड़ दिया । माता, बंधुजन तथा स्त्रीजन आदि को जो दुःख हुआ उसका वर्णन कोई कर नहीं सकता क्योंकि वह इतना ही अंतरंग में संताप कारक शोक था । इधर तो समस्त कुटुम्बीजन शोकसागर में मग्न हो रहे थे उधर सुकुमाल स्वामी निर्जन वन प्रदेश में हलन चलन रहित ठूँठ के समान खड़े हुए थे। वे विद्वान, निर्मल

आशय वाले, अपने शरीर की वैय्यावृत्ति में स्वयं भी निरपेक्ष, कर्म बंधन काटने में उद्यमी, चारों आराधना के आराधने में तत्पर, बारह भावानाओं के चिंतन में लीन मोक्षमार्ग में चलने में सर्वथा जागृत एक पांव(खड़गासन) से ध्यान कर रहे थे । तभी वहाँ एक विलक्षण घटना और घटित होती है कि सुकुमाल जी की पूर्वभव की भौजाई (अग्निभूति ब्राह्मण की स्त्री सोमदत्ता जिसके मुख पर सुकुमाल जी के जीव वायुभूति ने किसी समय लात मारी थी) संसार में अनेक त्रस स्थावर योनियों में परिभ्रमण करके पाप कर्म के उदय से उसी वन में (जिसमें कि सुकुमाल स्वामी ध्यान लगा रहे थे,) सियालनी हो गई थी । जब कोमल अंग के धारी महान कोमलांग सुकुमाल जी वन में आये थे तब उनके अत्यन्त कोमल पाँवों में से रुधिर की धारा बह चली थी । कहाँ तो वह नाजुकपन (अत्यंत कोमल शरीर) जब कि सरसों के दानें भी चुभते थे और कहाँ यह संयम धारण? सो सुकुमाल स्वामी के पाँवों से निकली रुधिर धारा को उस, पापिनी सियालनी ने चाटा सो उसे रुधिर का स्वाद आ गया था। वह सुकुमाल स्वामी को निश्चल खड़ा देख पूर्व जन्म के क्रोध और निदान के दोष से सुकुमाल स्वामी के दाहिनी पाँव में लग, उसे, क्रोधित हो खाने लगी । उस सियालनी की जो पिल्ली (बेटी) थी वह भी उसकी तरह बायें पाँव को खाने लग गई ।

जब सुकुमाल जी के पाँवों को इस प्रकार धीरे - धीरे नोंच - नोंच कर खाया जाने लगा तो उनके कोमल अंग में तीव्र वेदना हुई । उस वेदना और परीषह, उपसर्ग को जीतने के लिये सुकुमाल जी ने इन बारह भावनाओ का चिंतन किया । अनित्य भावना, अशरण भावना, संसार - भावना, एकत्व भावना, अन्यत्व भावना, अशुचित्व भावना, आस्रव भावना, संवर भावना, निर्जरा भावना, लोक भावना, बोधिदुर्लभ भावना और धर्म भावना इस प्रकार ये बारह भावनाएँ संवेग की जननी (मातायें) हैं। यह शरीर और यौवन यमराज रूपी शत्रु के द्वारा क्षणभंगुर है। ये भोग की वस्तुएँ बिजली के समान चंचल और बादलों की छाया के समान क्षण- ध्वंसी हैं । संसार में

भ्रमते हुये मैंने अनन्त शरीर धारण कर लिये अब यह जो मनुष्य शरीर मिला है सो तो कर्मों के नाश के लिये ही होना चाहिये । नरकों में नारकी जीवों ने अनन्त बार मेरे शरीर के तिल तिल के बराबर टुकड़े - टुकड़े किये हैं। मैंने असंख्य बार तिर्यंचगति भी धारण की है जिसमें क्षुधा से पीड़ित क्रूर जीवों ने मेरे शरीरों को नोंच नोंच कर खाया है।

यह मेरा वर्तमान शरीर कर्मों के नष्ट करने के लिये है, इसलिये उपसर्गों पर विजय प्राप्त करने में ही श्रेष्ठ लाभ होगा क्योंकि जो संसार रूपी शत्रुओं से डरते हैं वे ही दुष्कर और कठिन समस्याओं को प्राप्त करते हैं। वास्तव में उपसर्गों पर विजय प्राप्त करने को ही उत्कृष्ट तप व परीषह जय कहते हैं। संसार में जो भी राज्य, भोगोपभोग, शरीर, स्त्री, संपत्ति आदि जो भी वस्तु दिखाई देती है वे सब कर्मजनित हैं। ये सब चीजें समय पाकर काल रूपी अग्नि से भस्म हो जाती है। इस प्रकार संसार की वस्तुएँ और यह सारा संसार अनित्य है यही जानकर चतुर लोग उग्र कठोर तप के द्वारा नित्य जो शिव सुख है उसकी साधना करते हैं। इस प्रकार अनित्य भावना का चिंतन किया ।

जैसे किसी वन मे हिरण को सिंह पकड़ ले तो उस हिरण का कोई शरण (रक्षक) नहीं, उसी प्रकार मृत्यु के मुख में फँसे हुये प्राणी का कोई रक्षक नहीं । चाहे देव, देवेन्द्र, मनुष्य, विद्याधर, चक्रवर्ती कोई भी हो, जब उसे यम पकड़ कर ले जाता है तो कोई बचा नहीं सकता । खोटी पर्यायरूपी वन में भ्रमते हुये मैंने मारण, ताड़न, छेदन, भेदन आदि करोड़ों कष्ट भोगे हैं। इस समय तो मेरे पाँव ही खाये जा रहे हैं सो इस उपसर्ग का जीतना कर्म के विनाश, मोक्ष की प्राप्ति एवं संसार के कष्टों को नष्ट करने के लिये ही होगा । लोक में सत्पुरुषों पर कृपा और अनुग्रह करने के लिये अरिहंत आदि पंच परमेष्ठी ही समर्थ हैं अन्य अधम देवी देवता समर्थ नहीं हो सकते । इस दुर्धर उपसर्ग में विजय ही लाभकारी है। इस प्रकार विचारवान लोग और किसी को शरण न समझ निर्वाणदाता तपश्चरण और यम नियमादि नित्य शरणरूप धर्म

को ही रक्षक मान उपसर्गों को जीतते हैं। इस प्रकार अशरण भावना का चिंतन किया ।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरूप पंच परावर्तनमयी अनादि अनंत संसार में सत्पुरुष क्षणमात्र भी ठहरना नहीं चाहते क्योंकि यह संसार निंदनीय है। अनादिकाल से दुर्गतिपूर्ण संसार में भ्रमण करते हुये मैंने संसार के अन्य प्राणियों से अनेक वेदनायें सहीं हैं, यह जो मेरे पाँवों को यह सियालनी और उसकी पिल्ली खा रहे हैं सो तो उन दुःखों और वेदनाओं के सामने कितना दुःख है? इस दुःख और वेदना का सहना तो मेरे कर्मों के नाश जनित सुख के लिये होगा । इस प्रकार सुकुमाल मुनिराज संसार की विचित्रता को विचारते हुये पर्वत के समान निश्चल हो उपसर्ग सहने लगे ।

इस प्रकार जो सुख के अर्थी होते हैं वे दुःख से भरे हुये संसार के स्वरूप को जानकर उससे उदास होते हैं और जो सुख की खान मोक्ष है उसकी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय द्वारा साधना करते हैं। इस प्रकार सुकुमाल मुनिराज ने संसार भावना का चिंतन किया ।

मैं अकेला हूँ, नित्य हूँ, जन्म मृत्यु रहित हूँ, समस्त दुःखों से दूर हूँ, महान हूँ और अनंत गुणों का सागर हूँ। ये सियालनियाँ इस भीतर से दुर्गंधित शरीर को खाती है, मेरी आत्मा को तो खाती ही नहीं, इस प्रकार अपने परिणामों में कलुषता लाने की आवश्यकता नहीं है। विद्वान लोग अपने आप को अकेला जानकर अर्थात् यह जीव मरता भी अकेला ही है तो जन्मता भी अकेला ही है इसका कोई साथी नहीं होता यह निश्चय कर मुक्ति लाभ के लिये एकत्वभावना का चिंतन करते हैं। इस प्रकार परमध्यानी सुकुमाल स्वामी ने एकत्व भावना का चिंतन किया ।

यह शरीर महान घृणा का स्थान है। आत्मा से पृथक् है और सर्वथा क्षण भंगुर है। मन, वचन, काय ये सब आत्मा से अलग हैं। ये सियालिनियाँ शरीर को खाती है - मैं तो शरीर से अलग हूँ - मुझे तो खाती ही नहीं, फिर चिंता और दुःख भी क्या है? इस प्रकार तत्वज्ञाता बुद्धिमान लोग

शरीर से आत्मा को अन्य जान अपनी आत्मा का ही ध्यान करते हैं। आत्मा और शरीर दोनों ही अलग - अलग हैं। शरीर को कष्ट होने पर आत्मा दुःखी क्यों हो? इस प्रकार श्री सुकुमाल महामुनि ने अन्यत्व भावना का चिंतन किया। यह शरीर क्षुधा, तृषारूपी आग से जल रहा है। काम, क्रोध और रोग रूपी सर्प इसमें भरे हुये हैं। मांस, मज्जा, रुधिर आदि सप्त मलिन धातुओं से भरा हुआ है - ऐसा यह शरीर विद्वानों द्वारा कभी प्रशंसनीय नहीं हो सकता । यह शरीर जेलखाने के समान अशुभ है जिसे ये सियालनियाँ खाकर मुझे इस जेलखाने से छुड़ाती हैं सो यह तो मुझे लाभ ही हो रहा है, हानि नहीं । इस प्रकार भेद विज्ञान पूर्ण विचार से वे अत्यन्त धीर वीर सुकुमाल स्वामी स्यालनियों द्वारा पाँवों के खाये जाने पर भी संक्लेशता को प्राप्त न हो सके और ध्यान में लीन रहे । यह शरीर संपूर्ण अपवित्र पदार्थों का खजाना है, यह समझकर चतुर पुरुष अपने को तपश्चरण और संयम में लगाते हुये परम पवित्र मोक्ष की साधना करते हैं। इस प्रकार सुकुमाल महामुनिराज ने अशुचित्व भावना का चिंतन किया ।

जिस प्रकार छिद्र युक्त जहाज में बैठने वाले मनुष्य समुद्र में डूब जाते हैं उसी प्रकार मिथ्यात्वादि से उत्पन्न दुष्कर्मों के आस्रव आते रहने से यह जीव संसार समुद्र में डूब जाता है। जिसने तप संयम ध्यान और क्षमादि द्वारा कर्मों के आस्रव को रोक लिया है उनके सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं। संवर और निर्जरा भी होती है। अगर मैं इस उपसर्ग जनित दुःख से जरा सा भी अपना हृदय मलिन कर लेता हूँ तो पापास्रव होता है और अनन्त संसार बढ़ता है।

उस संसार में कवियों की वाणियों के भी अगोचर तीव्रतर दुःख भोगना पड़ता है, इस प्रकार सोचकर कल्याण के चाहने वाले महान कष्ट को भोगते हुये भी विचलित नहीं होते और आस्रव के महान् दोषों को जानकर, मन, वचन, काय को रोक कर आस्रव को रोका करते हैं। इस प्रकार श्री सुकुमाल मुनिराज ने आस्रव भावना का चिंतन किया ।

कर्मों के आस्रवों के रोकने का नाम ही गुणों का समुद्र संवर है। तपश्चरण, रत्नत्रय और श्रेष्ठ ध्यान से महात्माओं के संवर होता है यदि संवर के साथ भी सदाचरण और तप किया जाये तो बड़ा भारी फल होता है। आगे आने वाले कर्मों को रोकने का उपाय किये बिना कोरा तप लाभकारी नहीं होता । ऐसा दुःसह घोर उपसर्ग होने पर भी जो धीर वीर होते हैं वे एकाग्र मन तथा श्रेष्ठ ध्यान से कर्मों के आस्रव को रोकते हैं। संसार शत्रु का हर्ता और संपूर्ण अर्थसिद्धि का दाता यह संवर ही है, ऐसा समझ कर जो अविचल रहते हैं वे ही शिव लाभ प्राप्त करते हैं। इस प्रकार संवर से उत्पन्न होने वाले गुणों को जानकर चतुर लोगों का कर्त्तव्य है कि मन, वचन, काय के निग्रह से संवर करें । इस प्रकार श्री सुकुमाल स्वामी ने संवर भावना का चिंतन किया ।

निर्जरा दो प्रकार की होती है एक सविपाक निर्जरा और दूसरी अविपाक निर्जरा । सविपाक निर्जरा तो सभी के होती है और अविपाक निर्जरा योगीजनों के होती है। मुनियों द्वारा तपश्चरण से ही जो होती है वह अविपाक निर्जरा है वही गुणों की खान है और वह उपादेय है। सविपाक निर्जरा कर्म से ही उत्पन्न होती है और कर्म बंधन भी करती है यदि वह भी संवर के साथ होती है तो मुक्ति के लिए होती है।

कर्म विपाक से सविपाक निर्जरा स्वयं होती रहती है जो अत्यन्त भाग्योदय से पूर्वोपार्जित कर्मों का नाश करने वाली होती है। परीषह का जीतना ही सर्वार्थसिद्धि का देने वाला है इसलिये कर्मों की निर्जरा के चाहने वालों को परीषह उपसर्ग आने पर सुमेरु के समान निश्चल होना चाहिए । यह जानकर मुक्ति और श्रेष्ठ गुणों की माता सारभूत निर्जरा को चतुर लोग तपश्चरण के द्वारा मुक्ति के लिए करते हैं। इस प्रकार श्री सुकुमाल स्वामी ने निर्जरा भावना का चिंतन किया ।

अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक ऐसे लोक तीन प्रकार का है जो शाश्वत (नित्य) और अकृत्रिम है। इन तीन लोकों में दुःख और सुख दोनों हैं। अधोलोक में निरन्तर दुःख ही दुःख है, वहाँ सुख का लेश भी नहीं है।

मध्यलोक में कहीं सुख है तो कहीं दुःख है। उर्ध्वलोक में जो स्वर्गविमानादि हैं उनमें सदा ही सुख रहता है। ऊर्ध्वलोक के भी ऊपर जो शिवालय (मोक्ष) है वहाँ तो अनंत सुख है - वहाँ के सुख की कोई सीमा ही नहीं । यदि वास्तव में देखा जाये तो मोक्ष को छोड़कर यह समस्त लोक ही दुःख का पात्र है इसलिए ज्ञानीजन इस लोक से अलग होकर मोक्षलाभ करना चाहते हैं। मैंने अधोलोक (नरकों) में तथा तिर्यंच गतियों में कितने मारण ताड़न भेदनादि दुःख सहे हैं?

इस प्रकार विचार कर वे सुकुमाल स्वामी उस घोर उपसर्ग में भी व्याकुलता रहित हो स्थिरचित्त और निश्चल रहे । इस प्रकार आगम से दुःख और सुख से युक्त लोक के स्वरूप को जानकर बुद्धिमान लोग यम, नियम, तप, संयमादि द्वारा मोक्ष की साधना करते हैं। इस प्रकार सुकुमाल मुनिराज ने लोक भावना का चिंतन किया ।

संसार वन में भ्रमते - भ्रमते इस जीव को अत्यंत दुर्लभ मनुष्य पर्याय बड़ी ही कठिनता से मिलती है। मनुष्य पर्याय भी मिल जाये तो आर्यखंड का मिलना बड़ा कठिन है। आर्यखंड मिल जाने पर भी उत्तम कुल का मिलना कठिन है। उत्तम कुल मिल जाने पर दीर्घायु का प्राप्त होना महान कठिन है। दीर्घायु मिल जाने पर भी निर्मल बुद्धि का मिलना कठिन है। निर्मल बुद्धि भी मिल जाये तो पाँचों इन्द्रियों की सारी सामग्री का मिलना कठिन है।

वह भी मिल जाये तो कषाय हीनता या मंदता कठिन है। ये सब भी मिल जाये तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्ररूप रत्नत्रय की प्राप्ति महान दुर्लभ है। यह भी मिल जाये तो श्रेष्ठ वीतराग, हितोपदेशी गुरु का लाभ और सेवा महान दुर्लभ है। ये सब चीजें अत्यन्त दुर्लभ हैं। इन सबको जो प्राप्त कर शिव लक्ष्मीरूप जो बोधि है उसे सिद्ध करते हैं उन्हीं का जन्म सफल है। इन सब साधनों को प्राप्त होकर भी जो मोक्षसाधना में प्रमाद करते हैं वे मूर्ख संसार रूप वन में ही सदा चलते और भ्रमते रहते हैं। यदि मैं इस सियालनीकृत उपसर्ग से रंच मात्र भी विचलित हो गया तो मेरा संसार और दीर्घ होकर बढ़ जायेगा इसी विचार से वे सुकुमाल

मुनिराज उस घोर उपसर्ग में निश्चल ही रहे । अन्य भव्य जीवों का कर्त्तव्य है कि मनुष्य भव तथा सम्यग्दर्शनादि मोक्षसाधक समस्त योग सामग्री को प्राप्त कर तप संयमादि द्वारा निर्वाण की साधना करें । इस प्रकार परम ध्यानी महामुनिराज श्री सुकुमाल स्वामी ने बोधिदुर्लभ भावना का चिंतन किया ।

अपार संसार के दुःखों से निकालकर जो प्राणियों को आदर्श श्रेष्ठ शिवसुख में धर दे उसीका नाम धर्म है। इस धर्म के उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य ऐसे दश भेद हैं। धर्म के ये दश ही लक्षण भी हैं। इन क्षमादि दश लक्षणों से ही मोक्षदायक आदर्श धर्म होता है। यही धर्म संयमियों द्वारा मान्य है - धर्म, कायक्लेश के बिना नहीं होता । तीन लोक में जो भी कोई सुंदर द्रव्य और इष्ट पदार्थ की प्राप्ति होती है वह सब धर्म जनित है। समस्त प्रकार की विभूतियों, पदों और सुखों की प्राप्ति धर्म का ही फल (प्रसाद) है। यदि इस परीषह में मेरा हृदय धर्म को छोड़कर रंच मात्रा विकार को प्राप्त हो जाता है तो मेरे क्षमा धर्म कहाँ रहा? यह विचार कर श्री सुकुमाल महाराज ने उन सियालनियों को क्षमा करते हुये रंचमात्रा भी क्रोध नहीं किया । बुद्धिमान लोगों का कर्त्तव्य है कि इस प्रकार धर्म के फल को जानकर उत्तमक्षमादि दशविध लक्षणों से एक धर्म की ही साधना करें ।

इस प्रकार परमयोगी सुमेरु के समान अचल श्री सुकुमाल स्वामी ने धर्म भावना का चिंतन किया । इस प्रकार इन अनित्य अशरणादि बारह भावनाओं को जो भाते हैं, चिंतन करते हैं उनका रागद्वेषरूपी शत्रु नष्ट हो जाता है और उनके संवेग भाव की वृद्धि होती है। इस प्रकार विचार कर बुद्धिमान पुरुषों का कर्त्तव्य है कि पाप के नाश के लिए अनंत गुणों की जननी इन बारहभावनाओं को भावें । इस प्रकार इन बारह भावनाओं के चिंतन और ध्यान से भी सुकुमाल स्वामी के हृदय में वैराग्यभाव और भी महान दृढ़तम हो गया । उन्होंने अपनी आत्मा को शरीर से सर्वथा भिन्न जानकर निर्विकल्प चित्त से परम धीर वीरता के साथ उत्कृष्ट आत्म

ध्यान किया । उस अपनी आत्मा के ध्यान से सियालनी द्वारा दी हुई वेदना को न उन्होंने जाना और न उन्होंने चित्त में खेद ही किया । श्री सुकुमाल स्वामी सियालनी द्वारा दी हुई महान बाधा और पीड़ा को धीरता और दृढ़ता से जीतकर घोर उपसर्ग में भी चलायमान नहीं हुऐ और बज्र के समान अभेद्य और अचल ही बने रहे ।

उस पापिनी सियालनी ने अपनी पिल्ली के साथ - साथ श्री सुकुमाल स्वामी के दोनों घुटनों तक पाँव खा डाले और दूसरे दिन थोड़ा - थोड़ा करके दोनों जाँघें खा डाली और तीसरे दिन आधी रात के समय तक अपने बल से पेट को चीर फाड़कर खा डाला । शरीर के अन्दर जो आँतें थी उनको भी मुँह से खींचकर धीरे - धीरे खाना प्रारंभ कर दिया । इस प्रकार श्री सुकुमाल स्वामी की उत्तम प्रकार से चारों आराधनाओं का ध्यान करते -२ प्राणांत का समय आ गया और धर्मध्यान तथा समाधिपूर्वक समता से श्री सुकुमाल स्वामी ने अपने प्राण छोडे ।

अपनी बड़ी भारी योग शक्ति से बहुत पाप कर्मों को नष्ट कर परम पुण्य के बल से मुक्तिरानी की सखी स्वरूप, मनोहर, संपूर्ण कार्यों की सिद्धि को देनेवाली सर्वार्थ सिद्धि नामक स्वर्गभूमि श्री सुकुमाल मुनिराज ने प्राप्त की । इस प्रकार पुण्य बल से अनुपम विभूति संपदा को श्री सुकुमाल जी ने भोगकर संसार के भोगों में राग क्षीण हो जाने से विधि पूर्वक जिन दीक्षा ले, पशुओं द्वारा किये गये घोरातिघोर उपसर्गों को सहन कर सर्वार्थसिद्धि नामक स्वर्गभूमि प्राप्त की । श्रेष्ठ पुरुषों का भी कर्त्तव्य है कि अपने कल्याण के लिये वे भी धर्मसाधना और उपसर्ग परीषहों के जीतने में धैर्य - धारण करें । इस प्रकार बहिरंग और अन्तरंग समस्त प्रकार के परिग्रह से रहित हो, श्रेष्ठमार्ग के सन्मुख हो, जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र का सेवन करते हैं वे संसार रूपी समुद्र के पारगामी हो जाते हैं । वे ही धीर वीर समस्त परीषहों पर विजय प्राप्त कर तीन लोक में पूजित हो जाते हैं। उन सुकुमाल स्वामी आदि समस्त मुनिराजों का मैं उन जैसे गुणों की प्राप्ति के लिये स्तवन

वंदन करता हूँ।

इस प्रकार श्री आचार्य सकलकीर्ति भट्टारक विरचित सुकुमाल चरित्र में श्री सुकुमाल मुनिराज पर श्रृगाली द्वारा उपसर्ग का होना और उनके द्वारा उपसर्ग परीषहादि पर विजय प्राप्त करना, बारह भावनाओं का चिंतन और सर्वार्थ सिद्धि में गमन का वर्णन करने वाला आठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

अथ नवम सर्ग

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय और मोहनीय इस प्रकार इन चार घातिया कर्मों के घात करने वाले श्री अरिहंत भगवान, आठों कर्मों से रहित सिद्ध भगवान तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्ररूप रत्नत्रय के धारक संपूर्ण साधुओं को, जो कि मंगलकारी हैं, मैं नमस्कार करता हूँ।

घोर उपसर्गों के जीतने वाले सुकुमाल स्वामी के महात्म्य से स्वर्गलोक में देवों और इन्द्रलोक के आसन कंपायमान हो गये। जब इन्द्र और देवों ने उस महामुनि सुकुमाल का ज्ञान किया तो आश्चर्य सहित हो हर्षपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे। अहो ! गुणों की खान, धीर, वीर, तीन लोक वंदनीय, ज्ञानी भव्यजीवों में अग्रसर, पूज्यनीय श्री सुकुमाल स्वामी महामुनि महान धैर्यशाली हैं जिन्होंने इतने कोमल शरीर होते हुये भी इतना कठिन और घोर उपसर्ग सहन किया।

इस प्रकार उस धीर वीर की स्तुति कर देवांगनाओं, वाहनों तथा अपने देवों सहित इन्द्रगण श्री सुकुमाल स्वामी की पूजा के लिये आये। जिस समय देव और इन्द्र आये, देव दुंदुभियाँ बजीं, जय जय नंद नंद आदि शब्दों से आकाश गुंजायमान हो गया इस प्रकार बड़े हर्ष के साथ वे पृथ्वीतल पर आये। इन्द्रों ने आकर बड़ी भारी विभूति और भक्ति से दिव्य सामग्री द्वारा श्री सुकुमाल स्वामी के शरीर की पूजा की। जब देवों तथा इन्द्रों द्वारा जय आदि शब्द और नाना प्रकार के वादित्रों के शब्द सुने तब सुकुमाल स्वामी की माता यशोभद्रा तथा बन्धुओं आदि ने यह सुनकर "सुकुमाल योगिराज ने तप ग्रहण करके समाधिमरण किया और सवार्थ सिद्धि प्राप्त की है," तो वे माता

आदि (जो सुकुमाल स्वामी के वियोग से आर्तध्यान और रुदन कर रहे थे,) उसे छोड़ आनन्द पूर्वक उन सुकुमाल स्वामी की स्तुति करने लगे। अहो! यह सुकुमाल अत्यन्त धर्मात्मा था जिसने ऐसी - ऐसी संपदायें भोगी और अचानक ही इस प्रकार के तप को ग्रहण कर लिया और वनों में महान घोर उपसर्ग तीन दिन तक सहन कर, उस पर विजय प्राप्त कर सर्वार्थसिद्धि नामक स्वर्गधाम प्राप्त किया। इस प्रकार स्तुति कर समस्त नगरनिवासी सज्जन पुरुषों को बुलाया और सुकुमाल स्वामी की माता यशोभद्रा उस वन में पहुँची जहाँ उनका समाधि मरण हुआ था।

राजा आदि भी वहाँ पहुँच गये। माता यशोभद्रा ने श्री सुकुमाल जी के आधे खाये हुये शरीर को देखकर अन्तरंग में शोक से व्याकुल हो वह दुःख से विह्वल हो हलन चलन रहित मूर्छित हो गई। श्री सुकुमाल जी के शरीर के देखने से समस्त प्रियजन और भाई बंधु आदि दुःख से हा हा कार करते हुये रोने लगे। सुकुमाल स्वामी के धीरज को देखकर समस्त नगर निवासी तथा राजा आदि हृदय में महान आश्चर्य करते हुये उनकी प्रशंसा करने लगे। श्री सुकुमाल जी की माता यशोभद्रा को जब चेतना हुई तो उसने अपने विवेक से शोक को दूर कर श्रेष्ठ वचनों द्वारा बंधुजनों को आश्वासन देकर कहने लगी कि - संसार में ऐसे भी महान सत्पुरुष हैं जो ऐसे उत्कृष्ट भोगों को लात मार कर तपस्या में लीन होते हैं और उस तपस्या में घोर उपसर्गों को सहन करते हुये समाधिमरण कर सवार्थ सिद्धि जैसे महान सुखों को भोगते हैं।

ऐसे प्राणी धन्य हैं। इस प्रकार यशोभद्रा सेठानी ने श्री सुकुमाल स्वामी की स्तुति कर श्री सुकुमाल स्वामी के शरीर का अंतिम संस्कार किया और राजा तथा बंधुजनादि के साथ उस जिनालय को गई जहाँ वे यशोभद्र मुनिमहाराज विराजमान थे, उनके दर्शन कर वह कुछ हृदय में हँसी और जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमाओं को नमस्कार कर पूजा करती हुई हर्षपूर्वक मुनिमहाराज श्री यशोभद्र स्वामी से पूछा कि हे स्वामिन् ! श्री सुकुमाल पर जो मेरा इतना बड़ा हुआ स्नेह था इसका क्या कारण है सो कृपा करके मुझे

बतलाइये । इस प्रश्न को सुनकर श्री यशोभद्र मुनिराज ने सबको मनुष्य भव से लेकर अच्युतस्वर्ग तक जाने की तथा फिर मनुष्य पर्याय धारण करने आदि की समस्त पुरानी कथा अपने महान ज्ञान से कहीं जो इस प्रकार है - जो पहले नागशर्मा नामक ब्राह्मण था वह धर्म के प्रसाद से अच्युत स्वर्ग में गया, वहां से आकर सुरेन्द्रदत्त नामक सेठ हुआ ।

जो महान धर्मात्मा, महान धनी और संसार से विरक्त हो गया । सुरेन्द्रदत्त के पिता का नाम इन्द्रदत्त और माता का नाम गुणवती था इन दोनों के यह सुरेन्द्रदत्त श्रेष्ठ पुत्र हुआ था, जो तुम्हारा पति था तथा जो चंद्रवाहन राजा था वह भी तपोबल से आरण स्वर्ग में देव हुआ और आरण स्वर्ग से आकर मैं यशोभद्र नामक ऐसा भाई (जो तुम्हारे समक्ष हूँ) हुआ हूँ। मेरे पिता का नाम सर्वयश और माता का नाम यशोमती था । मैं बाल्यकाल से संसार के विषय भोगों से उदासीन रहा और मुझमें आश्चर्यकारक विरक्त बुद्धि थी । मैंने जिनदीक्षा धारण कर ली और तपोबल से मुझे अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान प्राप्त हो गये । जो त्रिदेवी ब्राह्मणी थी वह तपोबल से अच्युत स्वर्ग में चली गई वहाँ से आकर तू यशोभद्रा हो गई - जो मेरी बहिन थी, सो सम्यग्दर्शन के अभाव से अपने पुत्र सुकुमाल से तेरा महान स्नेह और मोह था, जो नागश्री का जीव अच्युत स्वर्ग के पद्मगुल्म विमान में पद्मनाभ नामक महर्द्धिक देव हुआ था, वहाँ से आकर तेरा पुत्र जगत् विख्यात महान पुण्यशाली परम धर्मात्मा सुकुमाल हुआ ।

जो सुबल राजा था वह तपोबल से आरण स्वर्ग में गया था सो वहाँ से आकर यह वृषभांक राजा हुआ है। जो अतिबल राजा था वह तपोबल से आरण स्वर्ग में गया और वहाँ से आकर इसी राजा वृषभांक के कनक ध्वज नामक पुत्र हुआ है।

इस प्रकार श्री यशोभद्र योगिराज के मुखरूपी चन्द्रमा से निकले हुये श्रेष्ठ वचनरूपी अमृत को पीकर मोहरूपी विष को श्री सुकुमाल की माता यशोभद्रा ने वृषभांक राजा आदि के साथ ही उगल दिया और संसार

की लक्ष्मी तथा गृह कुटुम्बादि से महान संवेग धारण कर अपने मोह की निन्दा करती हुई यशोभद्रा भी तप ग्रहण करने को तैयार हो गई और सुकुमाल जी की बत्तीस स्त्रियों में से जो चार स्त्रियाँ गर्भवती थीं उनको अपनी गृह संपदा देकर बाकी 28 सुकुमाल जी की स्त्रियों ने तथा बहुत बंधुओं के साथ अंतरंग बहिरंग परिग्रह का त्याग कर मुक्ति के निमित्त जिनदीक्षा ग्रहण कर ली ।

श्री वृषभांक राजा ने भी श्री यशोभद्र मुनिमहाराज से अपनी समस्त भवावली को सुनकर संसार के विषय भोगों से विरक्त हो अपने छोटे पुत्र को राज्य का भार सौंप अपने पुत्र कनक ध्वज तथा अनेक राजपुत्रों के साथ समस्त संपदा का त्याग कर दश प्रकार के बाह्य और चौदह प्रकार के अन्तरंग परिग्रह को छोड़ मुक्ति की माता स्वरूप जिन दीक्षा को मन, वचन, काय की विशुद्धि से धारण कर लिया । इस प्रकार दीक्षा ग्रहण करने के बाद वे सब तत्त्ववेत्ता परम तपश्चरण के साथ साथ श्रुताभ्यास और ध्यान में लवलीन हो गये । वे पर्वतों, निर्जन वनों, नगरों, ग्रामों आदि में बिहार करते हुये मोक्ष के मार्ग को तय करने में तत्पर हो गये ।

चार ज्ञान के धारक यशोभद्र मुनिराज, सुरेन्द्रदत्त योगिराज, महायोगी वृषभांक और योगीश्वर कनक ध्वज ये चारों चरम शरीरी थे सो शुक्लध्यान रूपी खड़ग से समस्त कर्मरूपी शत्रुओं को बलपूर्वक नष्ट कर इंद्रादि द्वारा पूजा संस्कार को प्राप्त हो, सम्यक्त्वादि आठ गुणों को पाकर अनन्त सुख से भरे हुये अनुपम मोक्ष को चले गये । शेष जो अन्य मुनिराज थे वे सब अपने अपने तपश्चरण के अनुसार सौधर्म स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक योग्य - पदों को प्राप्त हुये । कितनी ही स्त्रियों ने जो आर्यिका पद धारण किया था, सौधर्म स्वर्ग से लेकर अच्युत पर्यन्त महर्द्धिक देव पद को प्राप्त किया। वे सब महिलायें अत्यन्त रूपवती थीं किन्तु तपश्चरण में लवलीन हो गई और तपोबल से इन सुखों की प्राप्ति की ।

सुकुमाल स्वामी का जीव पुण्य और तप के फल से सर्वार्थ सिद्धि स्वर्ग में उपपाद शिला के मध्य रत्न के पर्यंक में अहमिंद्र हुआ

जिसने अन्तर्मुहूर्त में ही संपूर्ण नवयौवन को प्राप्त किया और दिव्य विभूति से विभूषित हो गया । उस महर्द्धिक अहमिंद्र ने शय्यातल से उठकर पुण्य की मूर्ति स्वरूप अन्य अहमिंद्रों को अपने नेत्रों से देख अवधिज्ञान के प्रभाव से जाना कि यह सब महान तप का ही फल है।

अवधिज्ञान से अपनी समस्त पुरानी भवावली का भी उनको ज्ञान हो गया । उस सुकुमाल स्वामी के जीव अहमिंद्र ने निश्चय किया कि यह सब धर्म का फल है इसलिये धर्म में उन्होंने अपनी निष्ठा और भी दृढ कर ली और सबसे पहले उस अत्यन्त पुण्यवान अहमिन्द्र देव ने धर्म की सिद्धि और वृद्धि के लिये रत्नमयी ऊँचे जिनालयों में जाकर महान तेजोमयी जिनबिंबों की अष्टविध द्रव्यों से भक्तिपूर्वक पूजा की । भगवान की उत्तमोत्तम गुणपूर्ण स्तोत्रों से स्तुति की - दिव्य पूजा द्रव्य चढ़ाये इस प्रकार अन्य अहमिन्द्रों के साथ पुण्यवान चतुर अहमिन्द्र ने परम पुण्य का उपार्जन किया । इस प्रकार सबसे पहले जिनेन्द्र देवाधिदेव की पूजा करके उसने अपना स्थान और पूर्व पुण्य के प्रताप से उपार्जित उत्तमविमानादि समस्त संपदायें स्वीकार कीं । सुकुमाल स्वामी जी का जीव यह महर्द्धिक अहमिन्द्र अपने स्थान पर रहता हुआ भी समस्त तीन लोकवर्ती जिन प्रतिमाओं, जिन मन्दिरों को अपने अवधिज्ञान से जानकर नमस्कार करता रहता था ।

जब - जब भगवान के गर्भ जन्मादि कल्याणक होते थे तब - तब अपने स्थान पर रहता हुआ भी सदैव भगवान को नमस्कार करके स्तुति और भक्ति करता रहता था । जब केवली भगवान को केवलज्ञान तथा निर्वाण की प्राप्ति होती थी तब - तब यह उनकी सदैव नमस्कार पूर्वक स्तुति भक्ति करता था । कितने ही अहमिन्द्र तो बिना बुलाये ही आ जाते थे और कितने ही बुलाने पर उन सबके साथ यह महर्द्धिक देव सदैव धर्मचर्चा करता रहता था । इस प्रकार सुकुमाल स्वामी का जीव यह महर्द्धिकदेव सर्वार्थसिद्धि में पुण्य बल से प्रवीचार रहित परम सुख भोगता था । स्फटिक व रत्नमयी महलों में, विमान में, पर्वतों और वनों में अन्य अहमिन्द्रों के साथ अपनी इच्छा

के अनुसार क्रीड़ा करता रहता था । उसके स्वभाव से ही सुन्दर अपने विशुद्ध रमणीक स्थान में जैसी प्रीति होती थी वैसी दूसरी जगह कहीं नहीं होती थी क्योंकि स्वर्गालय के समान सुन्दर स्थान ही और दुसरा कौन सा है? इसलिये अहमिंद्रदेव अपने स्थान को छोड़कर अन्यत्र दूसरे स्थान पर कहीं नही जाते हैं। वहाँ जितने भी अहमिंद्र होते हैं उन सबके समान विभूति, ऋद्धि और संपदा होती है।

वहाँ कोई छोटा - बड़ा नहीं है। सभी का मान और पद समान होता है। उनके लेश्या, ज्ञान, महासौख्य और भोगोपभोग संपदायें समान होती हैं। उन सब अहमिंद्रों में परस्पर स्नेह होता है, उन सभी का राग भाव मंद होता है, ध्यान सदैव उनके शुभ ही रहता है। ईर्ष्या, मद और विकार भावों से वे रहित और स्वच्छ हृदय के धारी महान निपुण होते हैं। समान धर्म के फल से उन सबका रूप भी समान ही होता है। "अहं इंद्रः ! इस शब्द का अर्थ है कि 'मैं' इन्द्र हूँ। इसलिये समस्त महर्द्धिकदेव वहाँ 'अहमिंद्र' अर्थात् मैं इन्द्र हूँ मुझसे दूसरा कोई इन्द्र नहीं है इस प्रकार सभी अपने मन में महान सुख का अनुभव करते हुये अपनी उन्नति का प्रमाण लगाते हैं। स्वर्गों में जो देवांगनाओं के सम्बन्ध से सुख होता है, उससे असंख्यगुणा, बाधा तथा उपमारहित, काम ज्वर से रहित सुख अहमिंद्रों को पग पग पर होता रहता है। अहमिंद्रों को आत्मजनित और प्रवीचार रहित सुख होता है।

तीन लोक में पुण्य के प्रताप से जो और जितना सर्वोत्कृष्ट सुख होता है वह सब अहमिंद्रों को प्राप्त हो जाता है, उस सुख में दुःख लेश भी नहीं है। इस प्रकार समस्त दिव्य लक्षणों से युक्त वह सुकुमाल स्वामी का जीव अत्यन्त धर्मात्मा और उत्कृष्ट सुखों में मग्न अहमिन्द्र तेंतीस सागर तक अहमिन्द्र पद के सुखों को भोगता रहा । तेंतीस हजार वर्ष बीत जाने के बाद संपूर्ण शरीर को आनन्द दायक दिव्य आहार वह करता था, जो केवल मानसिक और अमृतमय होता था । तेतीस पक्ष (पन्द्रह दिन का एक पक्ष) बीत जाने पर उनके श्वाँस आता था, उसी समय वह अहमिन्द्र संपूर्ण

तीन लोकवर्ती मूर्तिमान पदार्थों को अपने अवधिज्ञान से जान लेता था । अपनी अवधि के क्षेत्र तक अहमिन्द्रों के विक्रियाऋद्धि होती है। अहमिन्द्रों के उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या होती है और वे सदैव धर्मध्यान में ही तत्पर रहते हैं। उनका शरीर सप्त धातु, मल,पसीना आदि शारीरिक मलों से रहित होता है - एक हाथ ऊँचा उनका शरीर होता है।

नेत्र टिमकारते नहीं हैं। अब वह सुकुमाल स्वामी का जीव महर्द्धिक अहमिंद्र वहाँ से च्युत होकर, श्रेष्ठ कुल में मनुष्य जन्म लेकर तप और रत्नत्रय के आचरण से अवश्यमेव मोक्ष जावेगा । वह सुख के समुद्र में मग्न, अनिष्ट संयोग और इष्टवियोग से रहित समस्त सुखों से युक्त इस समय सर्वार्थसिद्धि में विराजमान है। इस प्रकार तप चारित्र के प्रभाव से अनुपम सुखों से पूर्ण, "दुःख" इस नाम से रहित, समस्त विकारों से रहित सुखों को वह अहमिंद्र सर्वार्थसिद्धि में भोग रहा है। बुद्धिमानों का कर्त्तव्य है कि वे भी सुख की प्राप्ति के लिये आचरण शुद्धिरूप धर्म की साधना करें । चारित्र से ही अनन्त सुख या मोक्ष की प्राप्ति होती है इसलिये चारित्र को नमस्कार है। चारित्र के अतिरिक्त आत्म कल्याण का करने वाला अन्य कोई नहीं है।

चारित्र ही धर्म का मूल है, उत्तम कृति है, इसलिए मैं चारित्र में ही अपना चित्त लगाता हूँ और भावना करता हूँ कि - हे चारित्र ! मेरे तू पूर्ण हो । धर्म के प्रभाव से श्री सुकुमाल जी ने उत्तम विभूति और रूप लक्ष्मी प्राप्त की । धर्म से ही अद्‌भुत संयम प्राप्त किया और अपना धर्म समझकर ही घोर उपसर्गों पर विजय प्राप्त की । धर्म से ही मुक्ति मार्ग एवं दूसरे भव में ही मुक्ति को देने वाली अनुपम सर्वार्थसिद्धि का लाभ हुआ । इसलिये हे बुद्धिमान पुरुषो ! सदैव यत्नपूर्वक धर्मसाधना करते रहो । धर्म के बिना यहाँ ऐसी संपदाये कैसे प्राप्त हों ? धर्म के बिना इंद्रियजनित महान सुख भी कैसे मिलें? धर्म के बिना समस्त लोक की सारभूत वस्तुयें कैसे मिलें? धर्म के बिना आश्चर्य कारक विश्व की मान्यता कैसे प्राप्त हो? धर्म के बिना अत्यंत सुंदर नारियाँ कैसे प्राप्त हों? धर्म के बिना मनोवांछित कार्यों की सिद्धि कैसे

हो? धर्म के बिना आत्मा और मन की विशुद्धि कैसे हो? धर्म के बिना शास्त्रज्ञान भी कैसे हो? धर्म के बिना उत्तम धर्म का लाभ भी कैसे हो? धर्म के बिना उत्तम संयम की प्राप्ति कैसे हो? धर्म के बिना शत्रुओं पर विजयलाभ कैसे हो? धर्म के बिना उत्तम पद कैसे मिलें? यह जानकर है विद्वज्जनो ! संसार के दुःखों का घात करने वाले, शिव सुख का कारण, संपूर्ण अर्थ की सिद्धियों को देने वाले परमार्थभूत अतुल एक जिन धर्म की साधना करो ।

सुकुमार (सुकुमाल) अत्यंत धीर वीर महान मुनिराज हुये हैं। मैंने उनका यह चरित्र क्या बनाया है किन्तु चरित्र की रचना के निमित्त से उनकी वंदना और स्तुति मैंने की है। वे श्री सुकुमाल मुनिराज मुझे संपूर्ण उपद्रवों के शांत करने वाली, एवं ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मरूप शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने से अद्‌भुत शक्ति देवें, मेरे कर्मों का नाश करें, मुझे समाधिमरण की शक्ति दें और अपने समस्त गुणों को मुझे भी प्रदान करें । मुझ भट्टारक श्री सकलकीर्ति आचार्य द्वारा इस सुकुमाल चरित्र की जो रचना हुई है उसे संपूर्ण दोषों से रहित ज्ञानीजन और यतीन्द्र कोई अशुद्धि रह गई हो तो उसे शुद्ध करलें क्योंकि मैं थोड़े से शास्त्र का ही जानने वाला हूँ।

अक्षर, स्वर, व्यंजन, मात्रा तथा पद आदि की मन वचन काय के योग के चलायमान हो जाने से कोई भूल चूक हो गई हो तो हे जिनवाणी माँ ! मुझे तुम क्षमा करना । जो मुनिजन मुक्ति लाभ के लिये यह सारा चरित्र पढ़ते हैं जो कि वीतरागता से पूर्ण और सुख की खान है वे शिवलाभ प्राप्त करते हैं। जो भव्य जीव इस चरित्र को सुनते हैं वे संपूर्ण राग भाव को नष्ट कर वैराग्य और सुंदर धर्म का लाभ करते हैं क्योंकि यह शास्त्र धर्म का बीजभूत है। भगवान् आदिनाथ को लेकर श्री महावीर पर्यन्त श्री चौबीस तीर्थंकर, गुणों के निधि, तीनलोक के शिखर पर विराजमान, कर्मरहित अनंत सुख के सागर महान परमपद के भागी श्री सिद्ध परमेष्ठी संपूर्ण मुनिराजों और संघ के हितकारी, मुक्ति के इच्छुक आचार्य परमेष्ठी, उपाध्याय परमेष्ठी तथा साधु परमेष्ठी मेरे तथा अन्य सब के लिए मंगल करें ।

मैं उनकी वदंना और स्तुति करता हूँ। निर्मल गुणों का निधान, तीन लोक में दीपक के समान, संपूर्ण दोषों से रहित, इन्द्रियों तथा पापरूपी शत्रुओं को नष्ट करने के लिये शस्त्र के समान, सर्वोत्कृष्ट सुख वाले मोक्ष का मूल, निर्ग्रन्थ वीतराग आचार्यों द्वारा रचित यह पवित्र ज्ञानतीर्थ सदैव पृथ्वी पर जयवंत रहे । इस सुकुमाल चरित्र के समस्त श्लोकों को एकत्रित करने पर उनकी संख्या 1100 (ग्यारह सौ) होती है ऐसा विद्वज्जन तथा सुधी जन जानें ।

(इस प्रकार भट्टारक श्री सकलकीर्ति आचार्य विरचित श्री सुकुमाल स्वामी के चरित्र में यशोभद्रा द्वारा दीक्षा ग्रहण, यशोभद्र, सुरेन्द्रदत्त, वृषभांक, कनकध्वज का मोक्ष गमन और सर्वार्थसिद्धि में अहमिंद्र की विभूति का वर्णन करने वाला नोवाँ सर्ग पूर्ण हुआ ।)

इति श्री सुकुमाल चरित्रं समाप्तोऽयं सर्वेषां मंगलं भवतु

परिवार का पालन और अतिथि की सेवा के लिए धन कमाना सार्थक है किन्तु धन संग्रह के लिए धन कमाना अनुचित है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

प. पू. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, दीक्षा सम्राट आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी महाराज द्वारा रचित, संपादित साहित्य

1. निज अवलोकन
2. देशभूषण कुलभूषण चरित्र
3. हमारे आदर्श
4. चित्रसेन पद्मावती चरित्र
5. नंगानंग कुमार चरित्र
6. धम्म रसायण
7. मौनव्रत कथा
8. सुदर्शन चरित्र
9. प्रभंजन चरित्र
10. सुरसुन्दरी चरित्र
11. जिनश्रमण भारती
12. सर्वोदयी नैतिक धर्म
13. चारुदत्त चरित्र
14. करकण्डु चरित्र
15. रयणसार
16. नागकुमार चरित्र
17. सीता चरित्र
18. योगामृत भाग-1
19. योगामृत भाग-2
20. आध्यात्मतरंगिणी
21. सप्त व्यसन चरित्र
22. वीर वर्धमान चरित्र भाग-1
23. वीर वर्धमान चरित्र भाग-2
24. भद्रबाहु चरित्र
25. हनुमान चरित्र
26. महापुराण भाग-1
27. महापुराण भाग-2
28. योगसार-भाग-1
29. योगसार-भाग-2
30. भव्य प्रमोद
31. सदार्चन सुमन
32. तत्वार्थ सार
33. कल्याण कारक
34. श्री जम्बूस्वामी चरित्र
35. आराधना सार
36. यशोधर चरित्र
37. व्रतकथा संग्रह
38. तनाव से मुक्ति
39. उपासकाध्ययन भाग -1
40. उपासकाध्ययन भाग -2
41. रामचरित्र भाग-1
42. रामचरित्र भाग-2
43. नीतिसार समुच्चय
44. आराधना कथा कोश भाग-1
45. आराधना कथा कोश भाग-2
46. आराधना कथा कोश भाग-3
47. दशामृत (प्रवचन)

48. सिन्दूर प्रकरण
49. प्रबोध सार
50. शान्तिनाथपुराण भाग-1
51. शान्तिनाथ पुराण भाग-2
52. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार
53. सम्यक्त्व कौमुदी
54. धर्मामृत भाग-1
55. धर्मामृत भाग-2
56. पुण्य वर्द्धक
57. पुण्यास्रव कथा कोश भाग-1
58. पुण्यास्रव कथा कोश भाग-2
59. चौंतीस स्थान दर्शन
60. अकंपमती
61. सार समुच्चय
62. दान के अचिन्त्य प्रभाव
63. पुराण सार संग्रह भाग-1
64. पुराण सार संग्रह भाग-2
65. आहार दान
66. सुलोचना चरित्र
67. गौतम स्वामी चरित्र
68. महीपाल चरित्र
69. जिनदत्त चरित
70. सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
71. चेलना चरित्र
72. धन्यकुमार चरित्र
73. सुकुमाल चरित्र
74. कुरल काव्य
75. धर्म संस्कार भाग-1
76. प्रकृति समुत्कीर्तन
77. भगवती आराधना
78. निर्ग्रंथ आराधना
79. निर्ग्रंथ भक्ति
80. कर्मप्रकृति
81. पूजा-अर्चना
82. नौ-निधि
83. पंचरत्न
84. व्रताधीश्वर-रोहिणी व्रत
85. तत्वार्थस्य संसिद्धि
86. रत्नकरण्डक श्रावकाचार
87. तत्त्वार्थ सूत्र
88. छहढाला (तत्त्वोपदेश)
89. छत्रचूड़ामणि(जीवंधर चरित्र)
90. धर्म संस्कार भाग-2
91. गागर में सागर
92. स्वाति की बूँद
93. सीप का मोती
(महावीर जयन्ती प्रवचन)
94. भावत्रय फलप्रदर्शी
95. सच्चे सुख का मार्ग
96. तनाव से मुक्ति-भाग-2
97. कर्म विपाक

98. अन्तर्यात्रा
99. सुभाषित रत्न संदोह
100. अरिष्ट निवारक विधान संग्रह
101. पंचपरमेष्ठी विधान
102. श्री शांतिनाथ भक्तामर, सम्मेदशिखर विधान
103. मेरा संदेशा
104. धर्म बोध संस्कार 1,2,3,4
105. सप्त अभिशाप
106. दिगम्बरत्वः क्या, क्यों, कैसे?
107. जिनदर्शन से निजदर्शन
108. निश भोजन त्यागः क्यों?
109. जलगालनः क्या, क्यों, कैसे?
110. धर्मः क्या, क्यों, कैसे?
111. श्री महावीर भक्तामर स्तोत्र
112. मीठे प्रवचन 1,2,3
113. कल्याणी
114. कलम-पट्टी बुद्धिका
115. चूको मत
116. खोज क्यों रोज-रोज
117. जागरण
118. सीप का मोती
119. जय बजरंग बली
120. शायद यही सच है
121. डाक्टरों से मुक्ति
122. आ जाओ प्रकृति की गोद में
123. भगवती आराधना
124. चैन की जिन्दगी
125. धर्मरत्नाकर
126. हाइकू
127. स्वप्न विचार
128. क्षरातीत अक्षर
129. वसुनंदी उवाच
130. चन्द्रप्रभ चरित्र
131. चन्द्रप्रभ विधान
132. कोटिभट्ट श्रीपाल चरित्र
133. महावीर पुराण
134. वरांग चरित्र
135. पदमपुराण
136. विषापाहार स्तोत्र
137. पाण्डव पुराण
138. हीरों का खजाना
139. तत्वभावना
140. सम्राट चन्द्रगुप्त
141. जीवन का सहारा
142. धर्म की महिमा
143. जिन कल्पि सूत्रम्
144. विद्यानंद उवाच
145. सफलता के सूत्र
146. तत्वज्ञान तरंगड़ी
147. जिन कल्पि सूत्रम्
148. दुःखों से मुक्ति

149. णमोकार महार्चना
150. समाधि तंत्र
151. सुख का सागर
152. पुरूषार्थ सिद्धीउपाय
153. सुशीला उपन्यास
154. तैयारी जीत की
155. सदार्चन सुमन
156. शान्तीनाथ विधान
157. दिव्यलक्ष्य
158. आधुनिक समस्याऐं प्रमाणिक समाधान
159. वसुऋद्धि
160. संस्कारादित्य
161. मुक्तिदूत के मुक्तक
162. श्रुत निर्झरी
163. जिन सिद्धांत महोदधि
164. उत्तम क्षमा
165. मान महा विष रूप
166. तप चाहें सुर राय
167. जिस बिना नहिं जिनराज सीजे
168. निज हाथ दीजे साथ लीजे
170. परिग्रह चिंता दुःख ही मानो
171. रंचक दगा बहुत दुःख दानी
172. लोभ पाप को बाप बखाना
173. सतवादी जग में सुखी
174. उत्तम ब्रह्मचर्य
175. पार्श्वनाथ पुराण
176. गुण रत्नाकर
177. नारी का धवल पक्ष
178. खुशी के आंसू
179. आज का निर्णय
180. गुरू कृपा
181. तत्व विचारो सारो
182. अजितनाथ विधान

प्रेस में:-

फर्श से अर्श तक
स्वास्थ बोधामृत
कुछ कलियॉ कुछ फूल
प्रभाती संग्रह
आदिनाथ विधान
मुनिसुव्रतनाथ विधान
नेमिनाथ विधान
नवग्रह विधान
आराधना समुच्चय
आदि

सम्पूर्ण विश्व की हलचलों व आचार्य श्री वसुनंदी जी गुरूदेव ससंघ की जानकारी घर बैठे प्राप्त करने के लिऐ

श्री सत्यार्थी मीडिया

राष्ट्रीय मासिक पत्रिका के सदसस्य बनें

9058017645

मंगलाशीष:

प.पू. राष्ट्रसंत, सिद्धांत चक्रवर्ती

दि. श्वेतपिच्छाचार्य श्री १०८ विद्यानंद जी मुनिराज

परमपूज्य अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी आचार्य श्री

वसुनंदी जी मुनिराज

के

पढ़ना ना भूले — सुप्रसिद्ध — सुनना न भूले

श्री सत्यार्थी मीडीया की प्रस्तुती

मीठे प्रवचन

सोमवार से शनिवार सुनिए

प्रातः 8 बजे से

जिनवाणी चैनल पर

जिनमें अकेले चलने के हौसले होते हैं
उनके पीछे एक दिन काफिले होते हैं

मीठे प्रवचन

गिद्धात्मा से सिद्धात्मा

आत्मा की चार दशाऐं दृष्टिगोचर होती है, ज्यों - ज्यों दशा सुधरती जाती है त्यों - त्यों आत्मा ऊपर उठती जाती है । पहली दशा में आत्मा को 'गिद्ध आत्मा' कह सकते है यह आत्मा पर पदार्थ में या अनिष्टकारक वस्तुओं में अति आसक्त रहती है ये उर्ध्व गति या उन्नति की ओर गमन भी करे किंतु दृष्टि गिद्ध की तरह अद्योगति की ओर रहती है। दूसरी 'विद्ध आत्मा' होती है जिसे आत्मा और अनात्मा का भेद - विज्ञान हो गया किन्तु चारित्र मोहनीय कर्म उसके शरीर में विंधे हुए तीर की तरह से कष्ट देता है यदि किसी के शरीर में वाण लगा हो तो उसे निकालते समय बहुत कष्ट होता है। तीसरी आत्मा को हम 'निसिद्ध आत्मा' भी कह सकते है, यह आत्मा गिद्ध और विद्ध दशा से तो मुक्त है किन्तु अंतरंग के घाव पूर्णतया से ठीक नहीं हुए अतः कभी - कभी कष्ट का अनुभव करती है, इसे उत्तम अन्तरात्मा भी कहा जा सकता है किन्तु आत्मा की चतुर्थ दशा उसकी नियति, प्रकृति और स्वभाव कहा गया है उसे 'सिद्धात्मा' कहते हैं, सिद्धात्मा सर्वकर्मो से रहित मुक्तात्मा को कहा जाता है।

मीठे प्रवचन

अमोघ अस्त्र

पाप का अभिशाप जीवन को उस तरह बर्बाद कर देता है जैसे अनाज में लगा घुन (घुन उसे कहते है जो अन्दर घुसकर नष्ट करें) पाप आत्मा में घुसकर आत्मा को नष्ट करता है, पाप राहु - केतु की तरह आत्मा के तेज, शौर्य, पराक्रम व अमृतोपम सुखद आभा को नष्ट करने वाला होता है। पाप का ताप आत्मा को इस तरह जलाता है जैसे सूर्य का प्रचण्ड तेज सरोवर के जल को और पाप का संताप आत्मा को दहकाता है। जिस तरह पानी में पड़ी हुई विद्युत से युक्त लोहे की छड़ जल को गर्म करती है, उबालती है, वाष्पीकरण करके उसे नष्ट कर देती है। पाप के अभिशाप संताप और परिताप से बचाने में कोई समर्थ नहीं, हाँ आप्त के चरणों में पहुंचकर उस पाप से आत्मा की रक्षा की जाती है। प्रभु नाम गुरु नाम ही समर्थ है इसलिए पंचपरमेष्ठी या उनके अमृत वचन अथवा स्वयं की परमेष्ठी स्वरूप दशा ही आत्मा के लिए शरण है।

चिंता नहीं चिंतन करें

जीबन में महत्वाकांक्षाएँ उत्त्पन्न होती हैं तब उनको लेकर व्यक्ति तनावग्रस्त हो जाता है परंतु वास्तविकता तो यह है प्रकृति ने सब के लिए सब व्यवस्थित किया हुआ है। बच्चे के जन्म से पूर्व माँ के आँचल में दूध प्रकृति स्वतः भर देती है। जब प्रकृति व्यवस्था कर रही है तो चिंता क्यों? जो होता है अच्छे के लिए ही होता है, भगवान जो करता है, अच्छे के लिए करता है। जीवन में जो मिले उसका स्वागत करो और जो खो जाए उसको भी प्रेम से स्वीकार करो । चिंता करने से जीवन के संयोग नहीं बदलते । चिंताओं से समस्या का समाधान भी नहीं निकला करता अच्छा तो यही है कि चिंता करने की बजाय चिंतन करें, निर्णय लें तदनुसार कार्य करें, परिणाम जो आए उसको स्वीकार करें । प्रत्येक कार्य को जोश, उमंग, उत्साह से करें, कोटरी का भी स्वागत करो और कोठी का भी स्वागत करो । चिंता तो व्यक्तियों को भटका देती है जबकि चिंतन भटके हुए व्यक्तियों को सम्यक् मार्ग दिखाता है। चिता समान चिंता से दूर रहें और जीवन में चिंतन को स्थान देकर अग्रसर रहें । मस्त रहो, व्यस्त रहो चिंताओं से मुक्त रहो ।

कैसे हों साथी

जीवन में बहुत से रिश्ते तो जन्म लेते ही मिलते हैं जिन्हें हमें बनाना नहीं होता । कुछ रिश्ते जिसमें माता - पिता की भूमिका अधिक होती है जैसे पति - पत्नी का रिश्ता परंतु एक रिश्ता ऐसा होता है जो हम स्वयं बनाते हैं वह है मित्रता । अपना मित्र हम स्वयं चयन करते हैं और जब स्वयं चयन करना ही है तो अच्छे का चयन करो । मित्र हमारा सहचर, हमारा प्रतिरुप होता है। भूलकर भी कोई ऐसा व्यक्ति हमारा प्रतिरुप न बन जाए, हमारा निकटवर्ती न बन जाए जो गलत मार्ग पर चल रहा हो अथवा गलत आदतों का शिकार हो । वह दया, प्रेम, क्षमादि गुणों से युक्त हो, सभ्य हो, कोई गलत सलाह आपकों न देता हो, सुसंस्कारवान् हो । जिन लोगों के बीच अथवा जिनके साथ आप जी रहे हैं आप वैसे ही बनेंगे, लोगों का दृष्टिकोण भी तुम्हारे प्रति वैसा ही बनता जाऐगा अतः अच्छे मित्र बनाएँ जो जीवन के हर कदम पर आपका साथ दे । ऐसे व्यक्ति का चयन करें जिससे आप भी गौरवान्वित हो, आपके जीवन का भी विकास हो और आपके जीवन में अच्छे संस्कारों की शुरूआत भी हो ।